आज के उर्दू शायर

ग़ालिब

जीवनी और संकलन

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

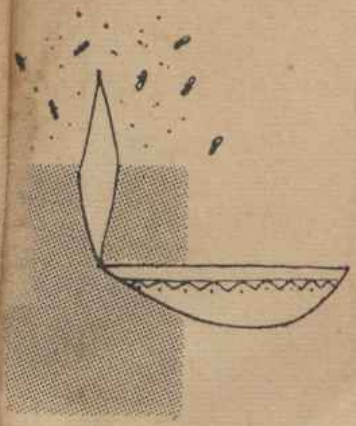

Pahia
PWG/pw
7/8/58

ग़ालिब

और उनकी शायरी

राजपाल एण्ड सन्ज दिल्ली

संपादक
प्रकाश पंडित

प्रथम संस्करण
जनवरी, १९५८

मूल्य

प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली

मुद्रक
युगान्तर प्रेस
डफ़रिन पुल, दिल्ली

१. जीवनी ... ५–२६

२. चयन ... २७–१०४

पूछते हैं वो कि 'ग़ालिब' कौन है।
कोई बतलाओ कि हम बतलाएं क्या ॥

जीवनी

ये मसायले-तसव्वुफ़[1] , ये तेरा बयान 'ग़ालिब'।
तुझे हम वली[2] समझते जो न बादहख़्वार[3] होता॥

यह केवल मिर्ज़ा 'ग़ालिब' की विनय-शीलता है कि अपने बादहख़्वार होने के कारण उन्होंने अपने 'वली' होने का दावा नहीं किया, अन्यथा जहां तक उर्दू साहित्य का सम्बन्ध है, और इससे अधिक साहित्य तथा जीवन का सम्बन्ध है, 'ग़ालिब' न केवल अपने युग के 'अदबी वली' (साहित्यिक अवतार) थे, न केवल आधुनिक युग के 'अदबी वली' हैं, बल्कि जब तक उर्दू भाषा और उसका साहित्य मौजूद रहेगा, उनका स्थान 'अदबी वली' के रूप में सदैव बना रहेगा।

परम्पराओं से विद्रोह करने और डगर से हटी हुई बात कहने के अपराध में संसार जो व्यवहार हर 'वली' से करता रहा है वही व्यवहार 'ग़ालिब' के साथ भी हुआ। 'ग़ालिब' से पहले उर्दू शायरी में भाव-भावनायें तो थीं, भाषा तथा शैली के 'चमत्कार' भी थे, लेकिन वे भाव-भावनायें और भाषा तथा शैली के चमत्कार 'गुलो-बुलबुल' 'ज़ुल्फ़ो-कमर' (माशूक़ के केश और कमर) और 'मीना-ो-जाम' (शराब की सुराही और प्याला) के वर्णन तक सीमित थे। बहुत हुआ तो किसी ने तसव्वुफ़ (सूफ़ीवाद) का सहारा लेकर संसार की असारता एवं नश्वरता पर आंसू बहा दिये और निराशावाद के

---

१. दर्शन-सम्बन्धी समस्याएं २. सिद्ध, अवतार ३. मद्यप

बिल में दुबक गया। ऐसे समय में, जबकि अधिकांश शायर :

सनम[1] सुनते हैं तेरी भी कमर है।
कहां है ? किस तरफ़ है ? औ' किधर है ?

और

सितारे जो समझते हैं ग़लतफ़हमी है ये उनकी।
फ़लक पर[2] आह पहुंची है मेरी चिंगारियां होकर॥

को 'नाजुक-खयाली' और शायरी का शिखर मान रहे थे, 'ग़ालिब' ने :

दाम हर मौज में है हल्क़ा-ए-सदकामे-नहंग।
देखें क्या गुज़रे हे क़तरे पे गुहर होने तक[3] ?

और

है परे सरहदे-इदराक से अपना मसजूद।
क़िबला को अहले-नज़र क़िबलानुमा कहते हैं[4] ॥

की बुलंदी से ग़ज़लगो शायरों को, और :

बक़द्रे-शौक़ नहीं ज़र्फ़े-तंगनाए ग़ज़ल।
कुछ और चाहिये वुसअ़त मेरे बयां के लिए[5] ॥

---

१. माशूक़ २. आकाश पर ३. हर लहर एक जाल है और इस जाल के फन्दे बहुत से मगरों की तरह मुँह खोले हुए हैं। देखें मोती बनने तक (मरने तक) बूंद (मनुष्य) पर क्या २ विपत्तियां टूटती हैं। ४. नमाज़ काबे की ओर मुँह करके पढ़ी जाती है। 'ग़ालिब' कहते हैं कि काबा तो केवल (कम्पास की) सुई मात्र है जो रास्ता दिखाती है। सिजदे का वास्तविक स्थान तो काबे और समझ से बहुत परे है। ५. ग़ज़ल की तंग गली (संकुचित क्षेत्र) मेरे शेर कहने के शौक़ के अनुकूल सामर्थ्य नहीं रखती, मेरे बयान के लिये विशाल क्षेत्र की आवश्यकता है।

की बुलंदी से नाज़ुकमिज़ाज ग़ज़ल को ललकारा तो नींद के मातों और माशूक़ की कमर की तलाश करने वालों ने चौंक कर इस उद्दण्ड नवागन्तुक की ओर देखा। कौन है यह ? यह किस संसार की बातें करता है ? फब्तियां कसी गईं। मुशायरों में मज़ाक़ उड़ाया गया। किसी ने उन्हें मुश्किल-पसंद (जटिल भाषा में लिखने वाला) कहा तो किसी ने मोहमल-गो(अर्थहीन शेर कहने वाला), और किसी ने तो सिरे से सौदाई ही कह डाला। लेकिन, जैसा कि होना चाहिये था, 'ग़ालिब' इन समस्त विरोधों और निन्दाओं को सहन करते रहे। हँस-हँस कर :

न सतायश[1] की तमन्ना न सिले[2] की परवा।
गर नहीं हैं मेरे अशआ़र में[3] माने न सही ॥

कहते हुए जीवन के गीत गाते रहे। यहां तक कि उनके क़लम की आवाज़ दैवी आवाज़ का रूप धारण कर गई और आज वही दैवी आवाज़ हमारे कानों में गूंजकर और हमारे हृदय में उतरकर उद्भावनाओं के नये-नये मार्ग सुझा रही है। 'ग़ालिब' उर्दू भाषा के एकमात्र शायर और साहित्यकार हैं जिनके व्यक्तित्व और साहित्य पर सबसे अधिक लेख, समालोचनात्मक पुस्तकें लिखी गई हैं, (उनके अपने 'दीवान' के तो इतने संस्करण निकल चुके हैं कि उनकी गणना संभव नहीं) और जिनके शेरों को जितनी बार पढ़ा जाये उतनी बार नये भावार्थ के साथ सामने आते हैं।

---

१. प्रशंसा २. पुरस्कार ३. शेरों में

मिर्ज़ा असद-उल्ला खां 'ग़ालिब', जो पहले 'असद' उपनाम से और फिर 'ग़ालिब' उपनाम से प्रसिद्ध हुए, २७ दिसम्बर १७९७ ई० के दिन आगरा में पैदा हुए। गोत्र, वंश के बारे में एक स्थान पर उन्होंने स्वयं लिखा है कि :

"असद-उल्ला खां उर्फ़ 'मिर्ज़ा नौशा,' 'ग़ालिब' तख़ल्लुस (उपनाम), क़ौम का तुर्क, सलजूक़ी सुलतान बरकियारुक़ सलजूक़ी की औलाद में से, उसका दादा क़ौक़ान बेग खां, शाह आलम के अहद (शासन-काल) में समरक़ंद से दिल्ली में आया। पचास घोड़े और नक़्क़ारा निशान से बादशाह का नौकर हुआ। पहासू का परगना, जो समरू बेगम को सरकार से मिला था, उसकी जायदाद में मुक़र्रर था। बाप असद-उल्ला खां मज़कूर (उल्लिखित) का अब्दुल्ला बेग खां दिल्ली की रियासत छोड़ कर अकबराबाद (आगरा) में जा रहा। असद-उल्ला खां अकबराबाद में पैदा हुआ। अब्दुल्ला बेग खां अलवर में राव-राजा बख़्तावर सिंह का नौकर हुआ और वहां एक लड़ाई में बड़ी बहादुरी से मारा गया। जिस हाल में कि असद-उल्ला खाँ मज़कूर पाँच छः बरस का था उसका हक़ीक़ी (सगा) चचा नस्रउल्ला बेग खां मरहटों की तरफ़ से अकबराबाद का सूबेदार था। १८०३ ई० में जब जनरल लेक अकबराबाद पर आये तो नस्रउल्ला बेग खां ने शहर सपुर्द कर दिया और अताअत (अनुकरण) की। जनरल साहब ने चार सौ सवार का ब्रिगेडियर किया और एक हज़ार सात सौ की तनख़्वाह मुकर्रर की। फिर जब उसने अपने ज़ोरे-बाज़ू से

सौंख, सौंसा दो परगने भरतपुर के क़रीब होल्कर के सवारों से छीन लिये तो जनरल साहब ने वो दोनों परगने बहादुर मौसूफ़ (उक्त महोदय) को बतरीक़े-इस्तमरार (हमेशा के लिए) अता फ़र्माये। मगर ख़ां मौसूफ़ जागीर मुकर्रर होने के दस महीने के बाद बमर्गे-नागाह (अचानक मृत्यु) हाथी पर से गिर के मारा गया। जागीर सरकार में बाज़याफ़्त हुई (वापस चली गई) और उसके एवज़ नक़दी मुक़र्रर हो गई और शरका (साझीदारों) को दे-दिलाकर साढ़े सात सौ रुपया इस शख़्श (ग़ालिब) की ज़ात को उसी ज़रे-मुआ़फ़ी (रुपये) में से मिलते हैं।"

पिता और चचा के देहान्त के बाद मिर्ज़ा 'ग़ालिब' का पालन-पोषण उनके ननिहाल (आगरा ही में) हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा के संबंध में अधिक सामग्री नहीं मिलती, लेकिन उनकी रचनाओं में खगोल, ज्योतिष, तर्क, दर्शन, पदार्थ-विज्ञान, संगीत, तसव्वुफ़ इत्यादि की असंख्य परिभाषाओं से मालूम होता है कि उनकी शिक्षा-दीक्षा पर पूरा ध्यान दिया गया था। उनकी आयु दस-ग्यारह वर्ष से अधिक नहीं थी और अभी वे मकतब (पाठशाला) में पढ़ते थे कि उन्होंने शेर कहना शुरू कर दिया। उन्हीं दिनों उन्हें फ़ारसी भाषा के एक बहुत बड़े विद्वान मुल्ला अब्दुल समद ईरानी से, जो भ्रमणार्थ भारत आये थे, फ़ारसी पढ़ने का अवसर मिला। गुरु ने योग्य शिष्य की मनोवृत्ति भांपकर उसे फ़ारसी के प्राचीन तथा आधुनिक साहित्य की जानकारी दिलाने में कोई

कसर न उठा रखी। स्वयं मिर्ज़ा 'ग़ालिब' ने अपनी पुस्तकों में जहां-कहीं उनकी चर्चा की है बड़े प्रेम और आदर-पूर्ण शब्दों में की है। तेरह वर्ष की आयु में मिर्ज़ा का विवाह दिल्ली के लोहारू कुल की एक महिला उमराओ बेगम से हो गया और शादी के दो-तीन साल बाद वे स्थायी-रूप से दिल्ली में आ बसे, जिसे एक स्थान पर उन्होंने यों बयान किया है।

"सात रजब १२२५ (६ अगस्त, १८१०) को मेरे वास्ते हुक्मे-दवामे-हब्स (स्थायी क़ैद का हुक्म) सादिर हुआ। एक बेड़ी (यानी बीवी) मेरे पांव में डाल दी और दिल्ली शहर को ज़िदान (क़ैदख़ाना) मुक़र्रर किया और मुझे उस ज़िदान में डाल दिया।"

शेरो-शायरी की लटक तो पहले से थी। अब दिल्ली पहुँचे तो यहाँ के शायराना वातावरण और आए दिन के मुशायरों ने क़लम में और तेज़ी भर दी। लेकिन नियमित रूप से शायरी में वे किसी के शिष्य नहीं बने, बल्कि अपने फ़ारसी भाषा तथा साहित्य के विशाल अध्ययन और ज्ञान के कारण उन्हें शब्दावली और शेर कहने की कला में ऐसी अनगिनत त्रुटियां नज़र आईं जिन्हें प्रस्तुत कर बड़े-बड़े उस्ताद गौरव का अनुभव करते थे। उनका मस्तिष्क एक टेढ़ी रेखा और एक प्रश्न-चिन्ह बन गया और उन्होंने उस्तादों पर टीका-टिप्पणी शुरू कर दी। उनका मत था कि हर पुरानी लकीर सिराते-मुस्तकीम (सीधा मार्ग) नहीं है और अगले जो कुछ कह गये हैं वह पूरी तरह सनद (प्रमाणित बात) नहीं हो

सकती।" अंदाज़े-बयान (वर्णन शैली) से नज़र हटाकर और "अंदाज़े-बयाँ और"[1] अपनाकर जब विषय-वस्तु की ओर देखा तो वहां भी वही जीर्णता नज़र आई। कहीं आश्रय मिला तो 'बेदिल' (एक प्रसिद्ध शायर) की शायरी में, जिसने यथार्थता की कड़ी दीवारों की बजाय कल्पना के रंगों से अपने चारों ओर एक दीवार खड़ी कर रखी थी। 'ग़ालिब' ने उस दीवार की ओर हाथ बढ़ाया तो उसके रंग छूटने लगे और आँखों के सामने ऐसा धुंदलका छा गया कि वे परछाइयां भी धुंदली पड़ने लगीं, जिनमें यदि वास्तविक शरीर नहीं तो शरीर के चिन्ह अवश्य मिल जाते थे। अतएव बड़े वेगपूर्ण परन्तु उलझे हुए ढंग से पच्चीस वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते उन्होंने लगभग २००० शेर 'बेदिल' के रंग में कह डाले, जिस पर उर्दू के प्रसिद्ध शायर और उस्ताद मीर तक़ी 'मीर' ने भविष्य-वाणी की कि "अगर इस लड़के को कोई कामिल (सिद्धहस्त) उस्ताद मिल गया और उसने इसे सीधे रास्ते पर डाल दिया तो लाजवाब शायर बनेगा, वरना मोहमल (अर्थहीन) बकने लगेगा।"

यह कामिल उस्ताद 'ग़ालिब' को कहीं बाहर से नहीं मिला बल्कि यह उनकी अपनी आलोचनात्मक दृष्टि थी जिस ने न केवल उस काल के २००० शेरों को बड़ी निर्दयता से काट फेंकने की प्रेरणा दी बल्कि आज जो छोटा-सा 'दीवाने-

---

१. हैं और भी दुनियां में सुख़नवर बहुत अच्छे।
कहते हैं कि ग़ालिब का है अंदाज़े-बयाँ और॥

ग़ालिब' हमें मिलता है और जिसे मौलाना मोहम्मद हुसैन 'आज़ाद' (प्रसिद्ध आलोचक) के कथनानुसार हम ऐनक की तरह आँखों से लगाये फिरते हैं, उसका संकलन करते समय 'ग़ालिब' ने हृदय-रक्त से लिखे हुए अपने सैंकड़ों शेर नज़र-अंदाज़ कर दिये थे।

'ग़ालिब' जब तक आगरे में रहे उन्हें ख़र्च की कोई तंगी न रही। दिल्ली आए तो कुछ समय तक यहां भी वही रंग-ढंग रहा। साढ़े सात सौ रुपए की वार्षिक पेनशन नवाब अहमद बख़्श खां से मिलती थी। रियासत अलवर से भी कुछ-न-कुछ आ जाता था। माता जीवित थीं, वे भी कभी-कभार कुछ भेज देती थीं, लेकिन यह सम्पन्नता अधिक दिनों तक न चली। नवाब अहमद बख़्श खां ने १८२६ ई० में अंग्रेज़ी राज्य और अलवर दरबार की स्वीकृति और अपने ख़ानदान की रज़ामंदी से अपनी जायदाद का विभाजन कर दिया और स्वयं एकांत वास धारण कर लिया। 'ग़ालिब' की पेनशन से सम्बंधित इलाक़ा चूँकि नवाब अहमद बख़्श खां के बड़े लड़के शम्सउद्दीन अहमद खाँ के हिस्से में आया था और 'ग़ालिब' के सम्बंध नवाब के विरोधी लोगों से थे इसलिए पहले तो पेनशन की अदायगी में तरह-तरह के रोड़े अटकाए गये और फिर अप्रैल १८३१ ई० में वह बिल्कुल बंद कर दी गई। इसके साथ ही ऋण-दाताओं ने (मिर्ज़ा अपने सुख, विलास और मदिरापान के लिए प्रायः ऋण लेते रहते थे) मारे तक़ाज़ों के नाक में दम कर दिया। विपत्ति पर विपत्ति यह पड़ी कि उनके छोटे

भाई मिर्ज़ा यूसुफ़ उन्हीं दिनों अट्ठाईस वर्ष की आयु में पागल हो गये। परिणाम इस का यह हुआ कि मिर्ज़ा 'ग़ालिब', जिन्होंने तंगी और परेशानी का एक दिन भी न देखा था, विपत्तियों का ऐसा पहाड़ टूट पड़ने से एकदम घबरा गये। इसी सम्बन्ध में, अर्थात् अपनी पेनशन का झगड़ा गवर्नर-जनरल की कौंसल द्वारा चुकवाने और उसे फिर से जारी कराने के सम्बंध में उन्होंने कलकत्ते की लम्बी यात्रा की और तीन वर्ष वहाँ गुज़ारे। वहां, और रास्ते में लखनऊ आदि शहरों में, उन्होंने बड़े-बड़े उस्तादों से लोहा भी लिया।

पेनशन का झगड़ा कहीं १८३७ ई० में जाकर तै हुआ जब नवाब शम्सउद्दीन खां एक अंग्रेज़ रेज़ीडेंट का वध कराने के अपराध में फांसी पर लटका दिये गये और उनकी रियासत अंग्रेज़ी सरकार ने अपने अधिकार में ले ली। इस बीच में 'ग़ालिब' :

क़र्ज़ की पीते थे मै और समझते थे कि हां।
रंग लायेगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन॥

पर अमल करते हुए चालीस-पचास हज़ार के ऋणी हो गये; और एक दीवानी मुक़द्दमे के सिलसिले में जब उनके विरुद्ध ५००० रुपये की डिगरी हो गई तो उनका घर से बाहर क़दम रखना असम्भव हो गया। (उन दिनों यह नियम था कि यदि ऋणी कोई सम्मानित व्यक्ति हो तो डिगरी की रकम अदा न करने की हालत में उसे केवल उस समय गिरफ़्तार किया जा सकता था जब कि वह अपने घर की चार-दीवारी

के बाहर हो।) यह इन्हीं और भावी विपत्तिय ही की देन थी कि उनके क़लम से :

रंज से ख़ूगर[1] हुआ इन्सां तो मिट जाता है रंज।
मुश्किलें मुझ पर पड़ीं इतनी कि आसां हो गईं॥

ऐसे उच्चकोटि के अनुभवपूर्ण शेर निकले। यह मिर्ज़ा 'ग़ालिब' ही की विशेषता थी कि उन दिनों, जबकि साहित्य-समालोचना का लगभग अभाव था, उन्होंने महान शायरी का यह भेद पा लिया कि शेर शून्य में टामक-टोइयां मारने का नहीं, किसी अनुभव के व्यक्तिगत प्रकटीकरण का नाम है और यह कि प्रत्येक काल में बड़ा शायर केवल वही हो सकता है जो अपने काल की विडम्बनाओं तथा संघर्षों को सहिष्णुता और आत्म-सम्मान में रचे हुए संकेतों में प्रकट कर सके। आने वाली पीढ़ियों में बिना उपदेशक बने यह अनुभूति उत्पन्न कर सके कि उनको भी अपने काल की नई और जटिल कठिनाइयों का मुक़ाबला सहिष्णुता और आत्म-सम्मान के साथ करना है।

साढ़े सात सौ रुपये वार्षिक की पेनशन तो पुनः स्थापित हो गई लेकिन इस से क्या होता था? व्यक्तिगत और पारिवारिक व्यय और मुक़द्दमों और ऋण-दाताओं ने जीना दूभर कर दिया। कई बार उन्होंने किसी रियासत की नौकरी करने के बारे में भी सोचा, लेकिन चरम सीमा पर पहुँचे हुए आत्म-सम्मान ने इस बात की आज्ञा न दी।

---

१. अभ्यस्त

आत्म-सम्मान की हालत यह थी कि १८५२ में जब उन्हें दिल्ली कालेज में फ़ारसी के मुख्य अध्यापक का पद पेश किया गया और अपनी दुरवस्था सुधारने के विचार से वे टामसन साहब (सेक्रेट्री गवर्नमेंट आफ़ इंडिया) के बुलावे पर उनके यहां पहुँचे तो यह देखकर कि उनके स्वागत को टामसन साहब बाहर नहीं आये उन्होंने कहारों को पालकी वापस ले चलने को कह दिया। ('ग़ालिब' जहां कहीं जाते थे चार कहारों की पालकी में बैठकर जाते थे।) टामसन साहब को सूचना मिली तो बाहर आये और कहा कि चूंकि आप मुलाक़ात के लिए नहीं नौकरी के लिए आये हैं इसलिए कोई स्वागत को कैसे हाज़िर हो सकता है ? इसका उत्तर मिर्ज़ा ने यह दिया कि मैं नौकरी इसलिए करना चाहता हूँ कि उससे मेरी इज़्ज़त में इज़ाफ़ा हो, न कि जो पहले से है, उसमें भी कमी आ जाये। अगर नौकरी के माने इज़्ज़त में कमी आने के हैं तो ऐसी नौकरी को मेरा दूर ही से सलाम ! और सलाम करके लौट आये।

आर्थिक परेशानियां पूर्ववत् थीं कि मई १८४७ ई० में मिर्ज़ा पर एक और आफ़त टूटी। उन्हें अपने ज़माने के अमीरों की तरह बचपन से चौसर, शतरंज आदि खेलने का चसका था। उन दिनों में भी वे अपना खाली समय चौसर खेलने में व्यतीत करते थे और मनोरंजनार्थ कुछ बाज़ी बद कर खेलते थे। चाँदनी चौक के कुछ जौहरियों को भी जुए की लत थी, अतएव वे मिर्ज़ा ही के मकान पर आ जाते थे और यों धीरे-

धीरे उनका मकान एक बाक़ायदा जुआख़ाना बन गया। एक दिन जबकि मकान पर जुआ हो रहा था, शहर के कोतवाल ने मिर्ज़ा को रंगे-हाथों पकड़ लिया[1]।

शाही दरबार (बहादुर शाह ज़फ़र) और दिल्ली के रईसों की सिफ़ारशें गईं लेकिन सब व्यर्थ। उन्हें सपरिश्रम छः महीने का कारावास और दो सौ रुपये जुर्माना हो गया। बाद में असल जुर्माना के अतिरिक्त पचास रुपये और देने से परिश्रम माफ़ हो गया और डाक्टर 'रास', सिविल सर्जन दिल्ली, की सिफ़ारिश पर वे तीन महीने बाद ही छोड़ दिये गये। लेकिन 'ग़ालिब' जैसे स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए यह दण्ड मृत्यु के समान था। एक स्थान पर लिखते हैं :

> "मैं हर एक काम खुदा की तरफ़ से समझता हूं और खुदा से लड़ नहीं सकता। जो कुछ गुज़रा उसके नंग (लज्जा) से आज़ाद, और जो कुछ गुज़रने वाला है उस पर राज़ी हूं। मगर आरज़ू करना आईने-अ़बूदियत (उपासना के नियम) के ख़िलाफ़ नहीं है। मेरी यह आरज़ू है कि अब दुनिया में न रहूं और अगर रहूं तो हिन्दोस्तान में न रहूं।"

यह दुर्घटना व्यक्तिगत रूप से उनके स्वाभिमान की पराजय का संदेश लाई, अतएव :

---

१. मौलाना हाली ने मिर्ज़ा के एक पत्र के आधार पर लिखा है कि "शहर का कोतवाल उनका शत्रु था, इसलिए उन्हें जुएबाज़ी के अपराध में पकड़ लिया।" यह बात सही नहीं है। 'हाली' चूंकि मिर्ज़ा के शिष्य और स्वयं बड़े चरित्रवान थे इसलिए उन्होंने गुरु की लाज रखी है।

बंदगी[1] में भी वो आज़ाद-व-खुदबीं[2] हैं कि हम ।
उल्टे फिर आयें दरे-काबा[3] अगर वा न हुआ[4] ॥

कहने वाले शायर ने विपत्तियों और आर्थिक परेशानियों से घबराकर अंतिम मुग़ल बादशाह बहादुरशाह 'ज़फ़र' का दरवाज़ा खटखटाया । बहादुर शाह 'ज़फ़र' ने (जो स्वयं एक अच्छे शायर और उस्ताद 'ज़ौक़' के शिष्य थे) तैमूर खानदान का इतिहास फ़ारसी भाषा में लिखने का काम मिर्ज़ा के सपुर्द कर दिया और पचास रुपये मासिक वेतन के अतिरिक्त 'नज्मुद्दौला दबीरुलमुल्क निज़ाम-जंग' की उपाधि और दोशाला आदि 'खिलअ़त' प्रदान की और यों मिर्ज़ा बाक़ायदा तौर पर क़िले के नौकर हो गये । जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है—१८५४ ई० में वलीअहद सल्तनत (राज्य के उत्तराधिकारी) फ़तह-उलमुल्क मिर्ज़ा फ़खरू उनके शिष्य हुए । उन की सरकार से चार सौ रुपया वार्षिक वेतन बंधा । उसी वर्ष १६ नवम्बर को उस्ताद 'ज़ौक़' का देहान्त हो गया और बादशाह ने भी अपनी ग़ज़लें मिर्ज़ा को दिखाना शुरू कर दीं । [मिर्ज़ा 'ग़ालिब' इस काम को बादिले-नाख़्वास्ता (अनिच्छा पूर्वक) करते थे—'हाली'—'यादगारे-ग़ालिब'] इसके अतिरिक्त बादशाह के सब से छोटे शाहज़ादे मिर्ज़ा खिज़्र सुलतान ने भी उनकी शिष्यता ग्रहण की और कदाचित् उसी वर्ष नवाब वाजिद अली शाह की ओर से भी पांच सौ रुपया वार्षिक

---

१. भक्ति २. स्वतंत्र और आत्म-प्रशंसक ३. काबे का दरवाज़ा ४. खुला न मिला ।

वज़ीफ़ा नियत हो गया। प्रत्यक्ष है कि इसके बाद मिर्ज़ा सुख का सांस लेने योग्य हो गये होंगे, लेकिन दुर्भाग्य से यह स्थिति भी अधिक समय तक न रही। दो वर्ष बाद ही (१८५६ में) मिर्ज़ा फ़खरू हैज़े का शिकार हो गये। उसी वर्ष अंग्रेज़ों ने नवाब वाजिद अली शाह को तख़्त से उतार दिया। फिर मई १८५७ में 'ग़दर' हो गया और सितम्बर १८५८ ई० में मिर्ज़ा खिज़्र सुलतान हुमायूं के मक़बरे पर से गिरफ़्तार होकर मेजर हाडसन की गोली का निशाना बन गये और बहादुर शाह ज़फ़र को निर्वासित करके रंगून भेज दिया गया।

ग़दर के दिनों में क्या कुछ हुआ और मिर्ज़ा पर क्या गुज़री, उसका उल्लेख मिर्ज़ा ने अपनी पुस्तक 'दस्तंबो' में किया है। लिखते हैं कि ११ मई को देसी फ़ौज शहर में दाखिल हुई और उसी दिन मैंने मकान का दरवाज़ा बन्द करके बाहर की आमदो-रफ़्त ख़त्म कर दी। लेकिन मिर्ज़ा के कुछ अन्य बयानों से मालूम होता है कि (चूँकि उन्हें मालूम नहीं था कि ऊंट किस करवट बैठेगा, इसलिए) वे क़िले में भी हो आया करते थे। वास्तविकता जो भी हो, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि यह समय मिर्ज़ा पर बहुत भारी था। ख़र्च पूर्ववत् था और आय बिल्कुल नहीं थी। यदि उनके कुछ हिन्दू मित्र, उदाहरणतः हरगोपाल 'तफ़्ता' मेरठ से रुपया न भेजते, और महेशदास शराब का प्रबंध न करते, तो मिर्ज़ा के कथनानुसार 'कोई मेरी बेकसी का गवाह न होता।'

मिर्ज़ा ने ग़दर के दिनों में अंग्रेज़ों की कोई विशेष

सहायता नहीं की थी कि उन्हें कोई नया पुरस्कार या सम्मान मिलता; लेकिन उनके विचार में उनसे कोई विरोधी बात भी नहीं हुई थी कि जिसके कारण उनकी पेनशन ज़ब्त कर ली जाती। लेकिन शान्ति स्थापित होने के बाद जब उन्होंने यह मामला उठाया तो उत्तर मिला कि ग़दर के दिनों में तुम्हें विद्रोहियों से सहानुभूति थी, अब सरकार से क्यों मिलना चाहते हो? पेनशन जारी न हुई और मिर्ज़ा निराश होकर, नवाब रामपुर के बुलावे पर, जहां से उन्हें (दिल्ली में रहें तो सौ रुपया और रामपुर में रहें तो दो सौ रुपया) आर्थिक सहायता मिलने की आशा थी, रामपुर गये और कुछ समय वहां रहकर पुनः दिल्ली लौट आये। बाद में नवाब रामपुर और स्वयं अंग्रेज़ी राज्य के इस फ़ैसले से कि जो लोग ग़दर से पहले सरकारी ख़ज़ाने से वज़ीफ़ा या पेनशन पाते थे उनको वज़ीफ़े और पेनशनें पुनः प्रदान कर दी जायें, १८६० ई० में जब मिर्ज़ा को एक साथ पिछले तीन वर्ष की पेनशन (दो हज़ार दो सौ पचास रुपये) मिली तो पूरी की पूरी रक़म ऋणदाताओं के हड़प कर लेने पर भी उन पर काफ़ी ऋण बना रहा, जिसे वे जीवन-भर न चुका सके।

अंतिम दिनों में आर्थिक संकट के अतिरिक्त वे शारीरिक संकट में भी ग्रस्त हुए। १८५८ ई० में उन पर पेट में मरोड़ उठने का पहला आक्रमण हुआ और इसके बाद थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् ये दौरे आख़िर तक जारी रहे। पूरा शरीर फोड़ों से भर गया, अण्डकोश बढ़ने का रोग भी हुआ, और

१८६६ ई० में तो शारीरिक और मानसिक स्थिति यह हो गई कि :

"मेरे मुहिब (प्रिय मित्र) मेरे महबूब ! तुम को मेरी खबर भी है ? पहले नातवां था, अब नीम-जान हूं। आगे बहरा था, अब अन्धा हुआ चाहता हूं। जहां चार सतरें लिखीं, उंगलियां टेढ़ी हो गईं। हुरूफ़ (अक्षर) सूझने से रह गये। इकहत्तर बरस जीया, बहुत जीया, अब ज़िन्दगी बरसों की नहीं, महीनों और दिनों की है।"

और सचमुच इस भविष्यवाणी के बाद वे अधिक दिनों तक जीवित न रहे। १५ फ़रवरी १८६९ के दिन दोपहर ढले इस महान शायर और साहित्यकार का देहान्त हो गया, जिस ने एक ओर उर्दू शायरी को परम्पराओं और शायरों के अन्धानुकरण की ज़ंजीरों से निकालकर एक नये और दिव्य राजपथ पर डाल दिया तो दूसरी ओर उर्दू गद्य[1] में ऐसे कमाल दिखाये कि "रहे नाम 'ग़ालिब' का"।

---

१. यों तो मिर्ज़ा ने अपने जीवन में फ़ारसी और उर्दू शायरी के साथ-साथ फ़ारसी और उर्दू गद्य में भी कई पुस्तकें लिखीं और उनके कई संस्करण भी प्रकाशित हुए लेकिन उनके गद्य का जो कमाल उनके पत्रों में (मित्रों और शिष्यों के नाम) मिलता है उससे यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि वे शायर बड़े थे या गद्य-लेखक। पत्र-लेखन का ढंग उस काल में यह था कि पत्र अनगिनत और अद्भुत उपाधियों से शुरू किया जाता था और एक वाक्य में कही जा सकने वाली बात के लिए पचासों वाक्य प्रयोग में लाये जाते थे। मिर्ज़ा के नूतनता-प्रिय स्वभाव को यह ढंग बेकार और भोंडा नज़र आया और उन्होंने अपनी शायरी की तरह नये ढंग के पत्र-लेखन की नींव डाली।

(ग़ालिब के पत्रों के कई संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। अभी और खतों की तलाश हो रही है।)

मूल्यांकन—

जैसा कि 'ग़ालिब' की जीवनी से ज़ाहिर है, जिस समय उन्होंने होश संभाला मुग़ल राज्य का चिराग़ बुझ रहा था। दिल्ली अंग्रेज़ों के अधिकार में चली गई थी और शहनशाह बहादुर शाह ज़फ़र की हुकूमत क़िले तक सीमित रह गई थी। पुरानी व्यवस्था मिट रही थी और नई व्यवस्था ने अभी पूरी तरह जन्म नहीं लिया था। ऐसे अव्यवस्थापूर्ण वातावरण में, जब कि अन्य शायर तसव्वुफ़ या निराशा-वाद या किसी ऐसे ही अन्य वाद के शिकार हो चुके थे, 'ग़ालिब' अपना हृदयग्राही व्यक्तित्व, मानव-प्रेम, सीधा, स्पष्ट यथार्थ और इन सबसे अधिक दार्शनिक-दृष्टि लेकर साहित्य-क्षेत्र में आये। वे चूंकि शायरी को तुकबंदी नहीं सार्थक कला मानते थे और इस कसौटी पर खरी न उतरने वाली शायरी से उन्हें घोर घृणा थी और 'बेदिल' की काल्पनिक उड़ानों से वे बहुत प्रभावित थे इसलिए जब भी उन्होंने क़लम उठाया नई शैली के साथ एक नया विचार और एक नया विषय दिया। शुरू ही से उनकी शायरी इस वास्तविकता को साथ लेकर आई कि विषय-वस्तु और काव्य-रूप दो विभिन्न चीज़ें नहीं हैं, और न किसी एक को दूसरी पर प्रधानता प्राप्त है। बल्कि विषय-वस्तु काव्य-रूप को अपने साथ लेकर आती है और विषय-वस्तु के साथ-साथ काव्य-रूप बदलता रहता है। अपनी बात के विकृत तथा जीर्ण हो जाने के संशय से उन्होंने जीर्ण और पिटे हुए रूपकों और उपमाओं के प्रयोग के स्थान पर

नये रूपकों और उपमाओं का आविष्कार किया। इस कठिन डगर में अनगिनत बाधायें खड़ी हुईं। उनके समकालीन शायरों ने उनकी नूतनता की हंसी उड़ाई, उनके 'मोहमल-गो' इत्यादि कई नाम धरे, लेकिन वे चुपचाप रास्ते के कांटों से दामन बचाते आगे बढ़ते रहे; बल्कि छींटे उड़ाने वालों का कोई शेर यदि उन्हें पसन्द आ गया तो जी खोलकर उसकी दाद दी। 'ज़ौक़' के मुंह से यह शेर सुनकर उछल पड़े :

अब तो घबरा के ये कहते हैं कि मर जायेंगे।
मर के भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे ?

और 'मोमिन' के इस शेर पर तो यहां तक कह दिया कि मेरा पूरा दीवान ले लो और मुझे यह शेर दे दो :

तुम मेरे पास होते हो गोया।
जब कोई दूसरा नहीं होता॥

उन्होंने उस ज़माने में भी जागीरदारी के मिटते हुए मूल्यों का मातम किया और उभरती हुई नई जीवन-व्यवस्था की स्तुति की, जब नई व्यवस्था के प्रसिद्ध प्रचारक सर सय्यद अहमद (अलीगढ़) तक में ज़बान हिलाने का साहस न था। 'ग़ालिब' को उर्दू शायरी के सब से ऊंचे सिंहासन पर बिठाने के लिए इतिहास को शायद कुछ दिन और प्रतीक्षा करनी पड़ती यदि उन्हीं दिनों उनके योग्य शिष्य और प्रसिद्ध लेखक तथा सुधारक मौलाना 'हाली' ने 'यादगारे-ग़ालिब' में उनके शेरों की व्याख्या न की होती। लेकिन ग़ालिब की

शायरी का वास्तविक मूल्यांकन उनके देहान्त के लगभग तीस वर्ष बाद होना शुरू हुआ जब पश्चिमी शिक्षा ने लोगों के मस्तिष्क प्रकाशमान करने शुरू किये और शिक्षित लोग शायरी में घिसे-पिटे विषयों से उकताकर दर्शन-संबंधी विचार ढूंढ़ने लगे। 'ग़ालिब' के अतिरिक्त पूरी उर्दू शायरी में ये विचार और कहां थे कि लोगों की नज़रें भटकतीं ? अतएव 'ग़ालिब' की शायरी की सर्वप्रियता के साथ-साथ बहुत से शायरों ने उनका रंग अपना लिया। उनकी-सी सफलता तो किसी को प्राप्त न हो सकी, हां इन प्रयासों से पूरी उर्दू शायरी का स्वभाव बदल गया और प्राचीन शायरी नज़रों से गिर गई। 'हाली' के अतिरिक्त 'ग़ालिब' को अपना आदर्श तथा नेता मानकर जिन शायरों ने बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों की मांगें पूरी कीं और 'ग़ालिब' द्वारा स्थापित परम्पराओं को एक बाक़ायदा स्कूल का रूप दिया, उनमें 'इक़बाल' का नाम सब से पहले आता है। और 'इक़बाल' के बाद का तो कोई उर्दू शायर ऐसा नहीं मिलेगा जिसने 'ग़ालिब' के प्रति अपनी असीम श्रद्धा प्रकट न की हो, बल्कि उन्हें उर्दू शायरी का 'बावा-ए-आदम' स्वीकार करने में ज़रा भी हिचकिचाहट का अनुभव किया हो। आज न केवल उर्दू शायरों और लेखकों को, न केवल भारत सरकार को (जिसने निज़ामुद्दीन में मिर्ज़ा के मज़ार को श्रद्धा-स्वरूप नये सिरे से बनवाकर और डाक की टिकटों पर मिर्ज़ा का चित्र छापकर इस महान शायर की महानता को स्वीकार किया है), बल्कि पूरे देश की जनता

को अपने इस भारतीय शायर पर यथोचित गर्व है। और साहित्य को चूंकि भूगोल और भाषा की सीमाओं तक सीमित नहीं किया जा सकता, और 'ग़ालिब' चूंकि उर्दू भाषा और केवल भारत ही के नहीं पूरी मानव-जाति के शायर थे, इस लिए विश्व-साहित्य में शेक्सपियर, वर्ड्ज़वर्थ, मिलटन, कालीदास, टैगोर आदि की तरह उन्हें जितना ऊंचा स्थान दिया जाए कम है।

चयन

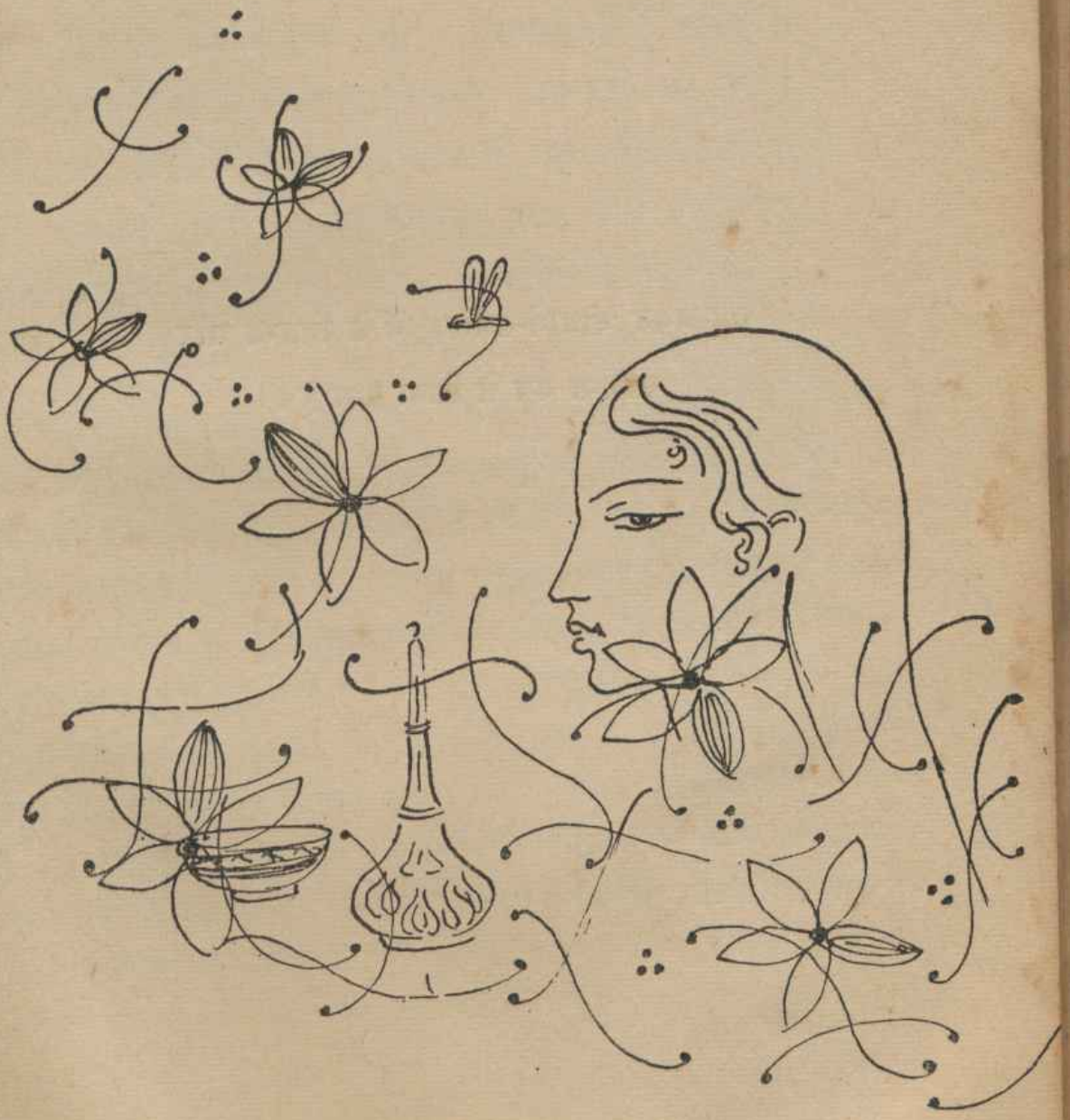

यह चयन 'दीवाने-ग़ालिब' में से स्वतन्त्र और
संक्षिप्त रूप से किया गया है।

रदीफ़ 'अलिफ़' (अ)[1]

नक़्श फ़र्यादी है किस की शोख़ी-ए-तहरीर का।
काग़ज़ी है पैरहन हर पैकरे-तस्वीर का[2] ॥
काविकावे[3] - सख़्त-जानी-हाए तनहाई न पूछ।
सुबह करना शाम का, लाना है जूए-शीर का[4] ॥
आगही[5] दामे-शनीदन[6] जिस क़दर चाहे बिछाए।
मुद्आ़[7] उन्क़ा[8] है अपने आ़लमे-तक़रीर[9] का ॥

◇ ◇ ◇

१. वह अक्षर जो ग़ज़ल के हर शेर के अन्त में आता है। २. सृष्टि के प्रत्येक चिह्न में किसी ने अपनी चित्रकारी से इतनी शोखियां भर दी हैं कि किसी व्यक्ति में उन्हें सहन करने की शक्ति नहीं, अतएव हर व्यक्ति फ़र्याद करता नज़र आता है। काग़ज़ी पैरहन (काग़ज का लिबास) : एक प्राचीन परम्परा के अनुसार ईरान में बादशाह के सामने फ़र्यादी काग़ज का लिबास पहन कर आते थे। ३. घोर परिश्रम ४. दूध की नदी लाना (असम्भव काम करना) ५. शेर का अर्थ समझने की शक्ति ६. सुनने का जाल ७. अर्थ ८. एक कल्पित पक्षी का नाम, अर्थात् जो न देखा जा सकता है न हाथ आ सकता है। ९. बात (मिर्ज़ा ग़ालिब पर चूँकि यह आरोप लगाया जाता था कि वे निरर्थक शेर कहते हैं इसलिए मिर्ज़ा फ़रमाते हैं कि बुद्धि चाहे जितना प्रयत्न करे हमारी बात न समझ पायेगी, यानी अज्ञानी लोग हमारी बात क्या समझेंगे ?)

जुज़ क़ैस[1] और कोई न आया बरूए-कार[2] ।
सहरा मगर ब-तंगी-ए-चश्मे-हसूद था[3] ॥
था ख़्वाब में ख़याल को तुझ से मुआ़मला ।
जब आंख खुल गई न ज़ियां था न सूद[4] था ॥
ढांपा कफ़न ने दाग़े-अयूबे-बरहनगी ।
मैं वरना हर लिबास में नंगे-वजूद था[5] ॥

◇ ◇ ◇

कहते हो न देंगे हम दिल अगर पड़ा पाया ।
दिल कहां कि गुम कीजे, हमने मुद्आ़ पाया ॥
इश्क़ से तबीयत ने ज़ीस्त[6] का मज़ा पाया ।
दर्द की दवा पाई, दर्दे - लादवा[7] पाया ॥
सादगी - ओ - पुरकारी, बेखुदी - ओ - हुशियारी ।
हुस्न को तग़ाफ़ुल[8] में जुर्रत-आज़मा[9] पाया ॥

---

१. मजनूं के सिवाय २. इश्क के मैदान में (छाती तान कर) ३. शायद इसका कारण यह हो कि इश्क़ का मैदान (मरुस्थल) ईर्ष्यालु की-सी तंग दृष्टि रखता था ३. हानि और लाभ ५. मृत्यु ने इस नग्न-जीवन के दोषों को ढाँप लिया अन्यथा मेरा हर लिबास अस्तित्व के लिए लज्जा जुटाता था । ६. जीवन ७. ऐसा दर्द जिसका कोई इलाज नहीं ८. बेपरवाही ९. साहसशील (चालाक)

गुन्चा[1] फिर लगा खिलने, आज हमने अपना दिल।
खूं किया हुआ देखा, गुम किया हुआ पाया॥
हाले-दिल नहीं मालूम लेकिन इस क़दर यानी।
हमने बारहा ढूंढा, तुम ने बारहा पाया॥
शोरे-पंदे-नासह ने[2] ज़ख़्म पर नमक छिड़का।
आप से कोई पूछे, तुम ने क्या मज़ा पाया॥

◇ ◇ ◇

दिल में ज़ौक़े-वस्लो-यादे-यार[3] तक बाक़ी नहीं।
आग इस घर में लगी ऐसी कि जो था जल गया॥
अर्ज़ कीजे जौहरे-अंदेशा की गर्मी कहां?
कुछ ख़याल आया था वहशत का कि सहरा जल गया[4]॥
दिल नहीं, तुझको दिखाता वरना दाग़ों की बहार।
इस चिराग़ां[5] का करूं क्या कारफ़र्मा[6] जल गया॥

---

१. कली (दिल को कली से उपमा दी है और कहा है कि पतझड़ में हमारा दिल खून होकर बह गया था और खो गया था, बसन्त ऋतु आ जाने से कली खिलने लगी तो हम यह समझे कि यह हमारा ही वह दिल है जो आज कली का रूप धारण करके लौट रहा है।) २. उपदेशक के शोर ने ३. मिलने की इच्छा और प्रेमिका की याद ४. अपने विचारों की गर्मी का वर्णन कहाँ जाकर करूँ, मरुस्थल में जाने के बारे में मात्र सोचा ही था कि उस गर्मी के प्रभाव से वह भी जल गया, अर्थात् अज्ञानियों के सामने अपने उच्च विचार कैसे प्रकट करूँ? ५. दीपमाला ६. ज्योति जुटाने वाला, अर्थात् दिल।

मैं हूँ और अफ़सुर्दगी[1] की आरज़ू 'ग़ालिब' कि दिल।
देखकर तर्ज़े-तपाके-अहले-दुनिया[2] जल गया॥

◇ ◇ ◇

शौक़ हर रंग रक़ीबे-सरोसामां निकला।
क़ैस तस्वीर के पर्दे में भी उरियाँ निकला[3]॥
जख़्म ने दाद न दी तंगी-ए-दिल[4] की यारब।
तीर भी सीना-ए-बिसमिल[5] से परअफ़शाँ[6] निकला॥
बू-ए-गुल[7] नाला-ए-दिल[8] दूदे-चिराग़े-महफ़िल[9]।
जो तेरी बज़्म से निकला सो परीशाँ निकला॥
दिल में फिर गिरया[10]ने इक शोर उठाया 'ग़ालिब'।
आह जो क़तरा न निकला था सो तूफ़ाँ निकला॥

◇ ◇ ◇

था ज़िंदगी में मौत का खटका लगा हुआ।
उड़ने से पेशतर[11] भी मेरा रंग ज़र्द था॥

---

१. उदासी २. संसार वालों के प्रेम (कृपाओं) के ढंग को देखकर ३. इश्क़ हर प्रकार की सज्जा और शृङ्गार का शत्रु होता है। चित्र में होने पर भी मजनूं (आशिक) नग्न दिखाई देता है। ४. दिल के घाव ने मेरे दिल के सीमित स्थान का लिहाज़ न किया। ५. घायल की छाती ६. खुले पैरों के साथ ७. फूल की सुगंधि ८. आर्त्तनाद ९. महफ़िल के चिराग का धुआं १०. आर्त्तनाद ११. पूर्व

जाती है कोई कश्मकश अंदोहे-इश्क़ की[1] ।
दिल भी अगर गया तो वही दिल का दर्द था ॥
अहबाब चारासाज़ी-ए-वहशत न कर सके[2] ।
ज़िंदां[3] में भी ख़याले-बयाबां-नवर्द था[4] ॥
ये लाशे-बेकफ़न 'असद'-ए-ख़स्ताजाँ की है ।
हक़ मग़फ़रत[5] करे अजब आज़ाद मर्द था ॥

◇ ◇ ◇

दहर में नक़्शे-वफ़ा वजह-ए-तसल्ली न हुआ ।
है ये वो लफ़्ज़ कि शरमिंदा-ए-मानी न हुआ[6] ॥
मैंने चाहा था कि अंदोहे-वफ़ा से छूटूं[7] ।
वो सितमगर मेरे मरने पे भी राज़ी न हुआ ॥
हूँ तेरे वादा न करने पे भी राज़ी कि कभी ।
गोश मिन्नतकशे-गुलबाँगे-तसल्ली न हुआ[8] ॥
किस से महरूमी-ए-क़िस्मत[9] की शिकायत कीजे ।
हमने चाहा था कि मर जायें सो वो भी न हुआ ॥

---

१. प्रेम के दुखों की २. मित्र मेरे प्रेमोन्माद का इलाज न कर सके ३. कारागार ४. जंगलों में घूम रहा था ५. खुदा बख्शे ! ६. संसार में वफ़ा (प्रेम निभाने की बात) किसी को संतुष्ट न कर सकी । यह शब्द ऐसा है जिसका कोई अर्थपूर्ण अर्थ नहीं है । ७. वफ़ा के दुःखों से ८. मेरे कानों ने तसल्ली देने वाली आवाज़ का उपकार न उठाया । ९. दुर्भाग्य

मर गया सदमा-ए-यक-जुंबिशे-लब से 'ग़ालिब'।
नातवानी से हरीफ़े-दमे-ईसा न हुआ[1] ॥

◇ ◇ ◇

दिखाऊँगा तमाशा दी अगर फ़ुर्सत ज़माने ने।
मेरा हर दाग़े-दिल एक तुख़्म[2] है सर्वे-चिरागां[3] का॥
मेरी तामीर[4] में मुज़मिर[5] है एक सूरत ख़राबी की।
हयोला बर्क़े-ख़िरमन का है ख़ूने-गर्म दहक़ां का[6]।
उगा है घर में हरसू सब्ज़ा[7], वीरानी! तमाशा कर।
मदार[8] अब खोदने पर घास के है मेरे दरबाँ का॥
ख़मोशी में निहाँ ख़ूं-गश्ता लाखों आरज़ूएं हैं।
चिराग़े-मुर्दा हूँ मैं बेज़बाँ गोरे-ग़रीबाँ का[9] ॥
बग़ल में ग़ैर की आज आप सोये हैं कहीं, वरना।
सबब क्या ख़्वाब में आकर तबस्सुम-हाए-पिनहाँ का[10]॥

---

१. मसीहा (फूंक मार कर मुर्दे को ज़िंदा करने वाला) तो मुझे नवजीवन प्रदान करने आया लेकिन मेरी दुर्बलता देखिये कि अभी उसने फूंक मारने के लिए होंठ हिलाये ही थे कि मैं उसके सदमे से पुनः मर गया। २. बीज ३. दीपमाला करने वाला पेड़ ४. निर्माण ५. निहित ६. किसान का खून कड़े परिश्रम से जितना गर्म होता है वही गर्मी खलियान पर गिरने वाली बिजली बन जाती है। ७. चारों ओर घास उगा है ८. निर्भर ९. मेरी लाखों आकांक्षायें इस प्रकार खून होकर मेरी चुप्पी में निहित हैं, जैसे परदेसियों की क़ब्रों के बुझे हुए चिराग़ों में लाखों आकांक्षायें निहित होती हैं। १०. चोरी-चोरी मुस्कराने का

नहीं मालूम किस-किस का लहू पानी हुआ होगा।
क़यामत है सरश्कालूदा होना[1] तेरी मिज़गाँ का[2] ॥
नज़र में है हमारी जादा-ए-राह-फ़ना[3] ग़ालिब।
कि ये शीराज़ा है आलम के अज्ज़ा-ए-परीशां का[4] ॥

◇ ◇ ◇

महरम[5] नहीं है तू ही नवा-हाए-राज़ का[6]।
यां वरना जो हिजाब[7] है, पर्दा है साज़ का॥
तू और सू-ए-ग़ैर नज़र-हाए-तेज़-तेज़[8]।
मैं और दुख तेरी मिज़ा-हाए-दराज़ का[9] ॥
काविश[10] का दिल करे है तक़ाज़ा कि है हनोज़[11]।
नाखुन पे क़र्ज़ उस गिरह-ए-नीमबाज़ का[12]॥
ताराज काविशे-ग़मे-हिजरां हुआ 'असद'।
सीना कि था दफ़ीना गुहर-हाए-राज़ का[13]॥

◇ ◇ ◇

---

१. आंसुओं से भीगना २. पलकों का ३. मृत्यु-पथ ४. यह संसार के बिखरे तत्वों को एक लड़ी में पिरोने वाला है। ५. भेदी ६. विश्व के भेदों के नग़मों का ७. पर्दा ८. प्रतिद्वन्द्वी पर तेरे प्रेम की तेज़ और गर्म नज़रें पड़ रही हैं। ९. लम्बी पलकों का १०. प्रयत्न ११. अभी १२. आधी खुली हुई गिरह का १३. प्रेम के भेदों के बहुत से मोतियों का खज़ाना मेरे दिल में बंद था; अफ़सोस, जुदाई के दुख ने यह खज़ाना लूट लिया, अर्थात् इश्क़ के सब भेद प्रकट कर दिये।

मुहब्बत थी चमन से लेकिन अब ये बेदिमाग़ी है।
कि मौजे-बूए-गुल[1] से नाक में आता है दम मेरा॥

◇ ◇ ◇

बक़द्रे-ज़र्फ़ है साक़ी खुमारे-तश्नाकामी भी।
जो तू दरिया-ए-मै है तो मैं ख़मयाज़ा हूं साहिल का[2]॥

◇ ◇ ◇

गरचे हूं दीवाना पर क्यों दोस्त का खाऊं फ़रेब।
आस्तीं में दशना पिनहां[3] हाथ में नश्तर खुला॥
गो न समझूँ उसकी बातें गो न पाऊं उसका भेद।
पर ये क्या कम है कि मुझ से वो परी-पैकर[4] खुला॥
है ख़याले-हुस्न में हुस्ने-अमल का-सा ख़याल।
खुल्द[5] का इक दर[6] है मेरी गोर[7] के अन्दर खुला॥
मुंह न खुलने पर है वो आलम कि देखा ही नहीं।
ज़ुल्फ़से बढ़कर नक़ाब उस शोख़ के मुँह पर खुला॥
दर पे रहने को कहा और कह के कैसा फिर गया।
जितने अर्से में मेरा लिपटा हुआ बिस्तर खुला॥

---

१. फूलों की सुगन्धि की लहर २. ऐ साक़ी ! प्यासों का खुमार (पीने की इच्छा) भी साहस के अनुसार होता है। यदि तू मदिरा का दरिया है तो मैं उस दरिया का तट हूँ, अर्थात् जिस प्रकार तट दरिया को अपनी पकड़ में लेना चाहता है, मैं भी शराब का दरिया पीना चाहता हूँ। ३. कटारी छुपी है। ४. परी-जैसा रूपवान माशूक ५. जन्नत ६. दरवाज़ा ७. क़ब्र

क्यों अंधेरी है शबे-ग़म है बलाओं का नज़ूल[1] ।
आज उधर ही को रहेगा दीदा-ए-अख़्तर[2] खुला ।।
क्या रहूं ग़ुरबत[3] में खुश जब हो हवादिस का[4] ये हाल ।
नामा[5] लाता है वतन से नामाबर अक्सर खुला ।।
उसकी उम्मत[6] में हूं मैं, मेरे रहें क्यों काम बंद ।
वास्ते जिस शह के 'ग़ालिब' गुंबदे-बेदर[7] खुला ।।

◇ ◇ ◇

एक-एक क़तरे का मुझे देना पड़ा हिसाब ।
खूने - जिगर वदीअ़ते - मिज़गाने - यार था[8] ।।
गलियों में मेरी लाश को खेंचे फिरो कि मैं ।
जां दादहे - हवा - ए - सरे - रहगुज़ार था[9] ।।
कम जानते थे हम भी ग़मे-इश्क़ को पर अब ।
देखा तो कम हुए पे ग़मे-रोज़गार था[10]।।

◇ ◇ ◇

---

१. बलायें टूट रही हैं २. सितारे (भाग्य) की आंख ३. परदेस ४. विपत्तियों का ५. पत्र ६. सम्प्रदाय ७. आकाश ८. मेरे जिगर का खून माशूक़ की पलकों की अमानत था, उसे अदा करने के लिए एक-एक बूंद बहा देना पड़ी। ९. माशूक़ के रहगुज़ार की इच्छा में मैंने जान दे दी, अब मेरी लाश को दफ़न न करो, बल्कि गली-गली लिये फिरो—तात्पर्य यह है कि कभी तो मेरी लाश माशूक़ की गली में पहुँच ही जायेगी। १०. कम होने पर भी संसार भर के ग़मों के बराबर था।

बसके दुशवार है हर काम का आसां होना।
आदमी को भी मयस्सर नहीं इन्सां होना॥
गिरया[1] चाहे है ख़राबी मेरे काशाने की।
दरो-दीवार से टपके है बयाबां होना॥
वाए दीवानगी-ए-शौक़ कि हर दम मुझको।
आप जाना उधर और आप ही हैरां होना॥
की मेरे क़त्ल के बाद उसने जफ़ा से तौबा।
हाए उस ज़ूदे-पशेमां का पशेमां होना[2]॥
हैफ़[3] उस चार गिरह कपड़े की क़िस्मत 'ग़ालिब'।
जिसकी क़िस्मत में हो आशिक़ का गरेबां होना॥

◇ ◇ ◇

दोस्त ग़मख्वारी में मेरी सअ़ई[4] फ़र्मायेंगे क्या ?
ज़ख्म के भरने तलक नाख़ुन न बढ़ आयेंगे क्या ?
बेनियाज़ी[5] हद से गुज़री बंदापरवर कब तलक !
हम कहेंगे हाले-दिल और आप फ़र्मायेंगे, क्या ?
हज़रते-नासह गर आयें दीदा-ओ-दिल फ़र्शे-राह[6]।
कोई मुझ को ये तो समझा दे कि समझायेंगे क्या ?
आज वां तेग़ो-कफ़न[7] बांधे हुए जाता हूं मैं।
उज्र[8] मेरे क़त्ल करने में वो अब लायेंगे क्या ?

---

१. आर्तनाद २. शीघ्र लज्जित हो जाने वाले का लज्जित होना ३. अफ़सोस ४. प्रयत्न (सहायता) ५. विमुखता ६. उपदेशक महोदय यदि आयेंगे, हम उनके रास्ते में दिल और आंखें बिछा देंगे। ७. तलवार और कफ़न ८. आपत्ति

गर किया नासह ने हमको क़ैद अच्छा यूं सही ।
ये जुनूने-इश्क़[1] के अंदाज़ छुट जायेंगे क्या ?
ख़ानाज़ादे-ज़ुल्फ़ हैं[2] ज़ंजीर से भागेंगे क्यों ?
हैं गिरफ़्तारे-वफ़ा ज़िंदां[3] से घबरायेंगे क्या ?
है अब इस मामूरा[4] में क़हते-ग़मे-उलफ़त[5] 'असद' ?
हमने ये माना कि दिल्ली में रहें, खायेंगे क्या ?

◇ ◇ ◇

ये न थी हमारी क़िस्मत कि विसाले-यार[6] होता ।
अगर और जीते रहते यही इन्तज़ार होता ।।
तेरे वादे पे जिये हम तो ये जान-झूट जाना ।
कि ख़ुशी से मर न जाते अगर एतबार होता ।।
तेरी नाज़ुकी से जाना कि बंधा था अहद[7] बोदा ।
कभी तू न तोड़ सकता अगर उस्तवार[8] होता ।।
कोई मेरे दिल से पूछे तेरे तीरे-नीम-कश को[9] ।
ये ख़लिश[10] कहां से होती जो जिगर के पार होता ।।
ये कहां की दोस्ती है कि बने हैं दोस्त नासह[11] ।
कोई चारासाज़[12] होता, कोई ग़मगुसार[13] होता ।।
रगे-संग[14] से टपकता वो लहू कि फिर न थमता ।
जिसे ग़म समझ रहे हो ये अगर शरार[15] होता ।।

---

१. प्रेमोन्माद २. माशूक़ के केशों के बन्दी हैं ३. कारागार ४. बस्ती ५. प्रेम के दुखों का अकाल ६. माशूक से मिलाप ७. वचन ८. सुदृढ़ ९. ऐसा तीर जो आधी शक्ति से चलाया गया हो १०. वेदना ११. उपदेशक १२. उपचारक १३. हितैषी १४. पत्थर की नाड़ी १५. चिंगारी

ग़म अगर्चे जांगुसल है[1] पे कहां बचें कि दिल है।
ग़मे-इश्क़ गर न होता, ग़मे-रोज़गार[2] होता॥
कहूं किससे मैं कि क्या है शबे-ग़म[3] बुरी बला है।
मुझे क्या बुरा था मरना अगर एक बार होता॥
हुए मरके हम जो रुसवा, हुए क्यों न ग़र्क़े-दरिया[4]।
न कभी जनाज़ा उठता न कहीं मज़ार होता॥
ये मसायले-तसव्वुफ़[5] ये तेरा बयान 'ग़ालिब'।
तुझे हम वली[6] समझते जो न बादह-ख़्वार[7] होता॥

◇ ◇ ◇

हवस को है निशाते - कार क्या - क्या[8] ?
न हो मरना तो जीने का मज़ा क्या ?
नवाज़िश - हाए - बेजा[9] देखता हूं।
शिकायत - हाए - रंगीं[10] का गिला क्या ?
बला-ए-जां[11] है 'ग़ालिब' उसकी हर बात।
इबारत[12] क्या, इशारत[13] क्या, अदा क्या ?

◇ ◇ ◇

---

१. जान को समाप्त करने वाला २. सांसारिक ग़म ३. ग़म (विछोह) की रात ४. दरिया में क्यों न डूब गये ! ५. दर्शन सम्बन्धी समस्याएँ ६. सिद्ध, अवतार ७. मद्यप. ८. आकांक्षा को काम करने की क्या-क्या उमंगें हैं ? ९. (प्रतिद्वन्द्वी पर) व्यर्थ की कृपाओं को १०. उन कृपाओं की शिकायत का ११. जान का रोग १२. वर्णन १३. इशारे

दरख़ुरे-क़हरो-ग़ज़ब[1] जब कोई हम-सा न हुआ ।
फिर ग़लत क्या है कि हम-सा कोई पैदा न हुआ ॥
बंदगी[2] में भी वो आज़ाद-व-खुदबीं[3] हैं कि हम ।
उलटे फिर आयें दरे-काबा[4] अगर वा[5] न हुआ ॥
कम नहीं नाज़िशे - हमताई - ए-चश्मे-खूबां[6] ।
तेरा बीमार बुरा क्या है गर अच्छा न हुआ ॥
सीने का दाग़ है वो नाला[7] कि लब[8] तक न गया ।
खाक का रिज़्क़[9] है वो क़तरा कि दरिया न हुआ ॥
हर बुने-मू से दमे-ज़िक्र न टपके खूंनाब[10] ।
हमज़ा[11] का क़िस्सा हुआ इश्क़ का चर्चा न हुआ ॥
क़तरा में दजला[12] दिखाई न दे और जुज़्व में कुल[13]
खेल लड़कों का हुआ दीदा-ए-बीना[14] न हुआ ॥
थी खबर गर्म कि 'ग़ालिब' के उड़ेंगे पुर्ज़े ।
देखने हम भी गये थे पै तमाशा न हुआ ॥

◇ ◇ ◇

---

१. प्रकोप का सज़ावार २. भक्ति ३. स्वतन्त्र और गर्वी ४. काबे का दरवाज़ा ५. खुला ६. हसीनों की आँख (जो बीमार की आँख की तरह आधी बंद आधी खुली होती है) की तरह मैं भी बीमार हूँ । हम-नामी का यह गौरव भी कम नहीं । ७. आर्त्तनाद ८. होठों ९. आहार १०. इश्क़ की चर्चा करते हुए यदि रोयें-रोयें से शुद्ध रक्त न टपके ११. 'अमीर हमज़ा' का किस्सा जिसे लोग मनोरंजन मात्र के लिए सुनते हैं । १२. एक नदी का नाम (सागर) १३. एक तत्व में सकल संसार १४. पैनी दृष्टि

न हो हुस्ने - तमाशा दोस्त रुसवा बेवफ़ाई का।
ब-मुहरे-सद-नज़र साबित है दावा पारसाई का[1] ॥
न मारा जानकर बेजुर्म क़ातिल ! तेरी गरदन पर।
रहा मानिंद-खूने - बेगुनाह हक़ आशनाई का[2] ॥
वही इक बात है जो यां नफ़स[3] वां नकहते-गुल[4] है।
चमन का जलवा है बाअ़स मेरी रंगींनवाई[5] का ॥
न दे नामे[6] को इतना तूल[7] 'ग़ालिब' मुख़्तसर करदे।
कि हसरत-संज हूं अ़र्ज़े-सितम-हाए-जुदाई का[8] ॥

◇ ◇ ◇

ले तो लूं सोते में उसके पांव का बोसा मगर।
ऐसी बातों से वो काफ़िर बदगुमां हो जायेगा ॥
दिल को हम सरफ़े-वफ़ा[9] समझे थे क्या मालूम था।
यानी ये पहले ही नज़रे-इम्तिहां[10] हो जायेगा ॥

---

१. हुस्न अपना जलवा दिखाने के लिए व्याकुल रहता है और हर जगह अपना जलवा दिखा रहा है, उस पर बेवफाई का आरोप क्यों लगाया जाये जबकि सैकड़ों नज़रें जो उसे देखने का प्रयत्न करती हैं उसके आवरणों पर छाप लगा-लगाकर उसके संयमी होने का प्रमाण प्रस्तुत कर रही हैं। २. ऐ क़ातिल, तूने मुझे निरपराधी समझ कर क़त्ल न किया हालाँकि मैं तेरे हाथों मरने का इच्छुक था। तूने मित्रता का हक़ पूरा नहीं किया, इसलिए यह हक़ इस तरह तेरी गरदन पर सवार रहता है जित तरह किसी निरपराध की हत्या का बोझ। ३. श्वास ४. फूलों की सुगन्धि ५. मेरे रंगीन संगीत का कारण ६. पत्र ७. विस्तार ८. जुदाई की पीड़ा को बयान करने की आकांक्षा रखता हूँ। ९. प्रेम-मार्ग का साथी १०. परीक्षा की भेंट।

सब के दिल में है जगह तेरी जो तू राज़ी हुआ।
मुझ पे गोया इक ज़माना मेहरबां हो जायेगा॥
बाग़ में मुझको न लेजा वरना मेरे हाल पर।
हर गुले-तर एक चश्मे-खूँफ़िशां हो जायेगा[1]॥
वाए गर मेरा तेरा इनसाफ़ महशर[2] में न हो।
अब तलक तो ये तवक़्क़ो[3] है कि वां हो जायेगा॥
फ़ायदा क्या सोच आख़िर तू भी है दाना[4] 'असद'।
दोस्ती नादां की है जी का ज़ियां[5] हो जायेगा॥

◇ ◇ ◇

दर्द मिन्नत-कशे-दवा न हुआ[6]।
मैं न अच्छा हुआ बुरा न हुआ॥
जमअ करते हो क्यों रक़ीबों को।
इक तमाशा हुआ गिला न हुआ॥
हम कहां क़िस्मत आज़माने जायें।
तू ही जब खंजर-आज़मा न हुआ[7]॥
कितने शीरीं[8] हैं तेरे लब[9] कि रक़ीब[10]
गालियां खाके बेमज़ा न हुआ॥
है ख़बर गर्म उनके आने की।
आज ही घर में बोरिया न हुआ॥

---

१. हर फूल खून रोने वाली आँख बन जायेगा (मेरी हालत देखकर) २. प्रलय का समय ३. आशा ४. बुद्धिमान ५. हानि ६. पीड़ा ने दवा का उपकार स्वीकार न किया ७. तूने ही अपने खंजर की काट को न आज़माया ८. मधुर ९. होंठ १०. प्रतिद्वन्द्वी

क्या वो नमरूद[1] की ख़ुदाई थी।
बंदगी में मेरा भला न हुआ॥
जान दी, दी हुई उसी की थी।
हक़ तो ये है कि हक़ अदा न हुआ॥
ज़ख़्म गर दब गया, लहू न थमा।
काम गर रुक गया रवा[2] न हुआ॥

◇ ◇ ◇

गिला है शौक़ को दिल में भी तंगी-ए-जा का।
गुहर में महव हुआ इज़तराब दरिया का[3]॥
दिल उसको पहले ही नाज़ो-अदा से दे बैठे।
हमें दिमाग़ कहां[4] हुस्न के तक़ाज़ा का॥
फ़लक[5] को देखके करता हूं उसको याद 'असद'।
जफ़ा में उसकी है अंदाज़ कारफ़र्मा का[6]॥

◇ ◇ ◇

एतबारे-इश्क़ की ख़ानाख़राबी देखिये।
ग़ैर ने की आह लेकिन वो ख़फ़ा मुझ पर हुआ॥

◇ ◇ ◇

---

१. एक बादशाह जो स्वयं को खुदा कहता था २. चालू ३. इश्क़ को अपना उपद्रव दिखाने के लिए इस बात की शिकायत है कि दिल का मैदान छोटा है। यों कहिए कि दरिया की तूफान बनने की बेचैनी मोती में बंद हो गई है। ४. इतनी बुद्धि कहाँ ? ५. आकाश ६. उसके अत्याचारों का ढंग दैवी शक्ति के अत्याचारों का सा है।

मैं और बज़्मे-मै[1] से यूं तश्नाकाम[2] आऊं।
गर मैंने की थी तौबा साक़ी को क्या हुआ था?
है एक तीर जिसमें दोनों छिदे पड़े हैं।
वो दिन गये कि अपना दिल से जिगर जुदा था॥
दरमांदगी[3] में 'ग़ालिब' कुछ बन पड़े तो जानूं।
जब रिश्ता बेगिरह था नाखुन गिरह-कुशा था[4]॥

◇ ◇

घर हमारा जो न रोते भी तो वीरां होता।
बहर[5] अगर बहर न होता तो बियाबां होता॥
तंगी-ए-दिल[6] का गिला क्या, ये वो काफ़िर दिल है।
कि अगर तंग न होता तो परीशां होता॥

◇ ◇ ◇

न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होता।
डबोया मुझ को होने ने, न मैं होता तो क्या होता॥
हुआ जब ग़म से यूं बेहिस तो ग़म क्या सर के कटने का।
न होता गर जुदा तन से तो ज़ानू पर धरा होता॥
हुई मुद्दत कि 'ग़ालिब' मर गया पर याद आता है।
वो हर इक बात पर कहना कि यूं होता तो क्या होता॥

◇ ◇ ◇

---

१. शराब की महफ़िल २. प्यासा ३. विवशता ४. जब कोई गांठ गिरह न थी (मुसीबत न थी) हमारे नाखुन में गिरहें खोलने की शक्ति थी (अब नहीं रही तो मुसीबतें टूट पड़ी हैं) ५. सागर ६. दिल की तंगी

बुलबुल के कारोबार पे हैं खंदा-हाए-गुल[1] ।
कहते हैं जिसको इश्क़ खलल[2] है दिमाग़ का ॥
सौ बार बंदे-इश्क़[3] से आज़ाद हम हुए ।
पर क्या करें कि दिल ही अदू[4] है फ़राग़ का[5] ॥

◇ ◇ ◇

वो मेरी चीने-जबीं[6] से ग़मे-पिनहाँ[7] समझा ।
राज़े - मकतूब ब - बेरब्ती - ए-उनवां समझा[8] ॥
शरहे-असबाबे-गिरफ़्तारी-ए-खातिर मत पूछ[9] ।
इस क़दर तंग हुआ दिल कि मैं ज़िंदां[10] समझा ॥
सफ़रे-इश्क़ में की ज़ोफ़ ने राहत-तलबी[11] ।
हर क़दम साया को मैं अपने शबिस्तां समझा[12] ॥
दिल दिया जान के क्यों उसको वफ़ादार 'असद' ।
ग़लती की कि जो काफ़िर को मुसलमां समझा ॥

◇ ◇ ◇

फिर मुझे दीदा-ए-तर[13] याद आया ।
दिल जिगर तश्ना-ए-फ़र्याद आया[14] ॥

---

१. बुलबुल के रोने पर फूल हंस रहे हैं २. ख़राबी ३. इश्क़ की पकड़ ४. शत्रु ५. सुख-सन्तोष का ६. माथे के बल ७. निहित दुख ८. पते की असम्बद्धता से खत में क्या लिखा है, समझ गया ९. इश्क़ में जो दुख उठाये उसका कारण (व्याख्या) मत पूछ। १०. कारागार ११. निर्बलता ने आराम की इच्छा की । १२. साथ चलने वाली अपनी परछाईं को मैं शयनागार समझा । १३. भीगी हुई आंख १४. दिल और जिगर को फ़र्याद का इच्छुक देखकर

दम लिया था न क़यामत ने हनोज़[1] ।
फिर तेरा वक़्ते-सफ़र याद आया ॥
ज़िंदगी यूँ भी गुज़र ही जाती ।
क्यों तेरा राहगुज़र[2] याद आया ॥
क्या ही रिज़वां[3] से लड़ाई होगी ।
घर तेरा ख़ुल्द[4] में गर याद आया ॥
आह वो जुर्रते-फ़र्याद[5] कहां ।
दिल से तंग आके जिगर याद आया ॥
फिर तेरे कूचे को जाता है ख़याल ।
दिले-गुमगशता[6] मगर याद आया ॥
कोई वीरानी सी वीरानी है ।
दश्त[7] को देख के घर याद आया ॥
मैंने मजनूं पे लड़कपन में 'असद' ।
संग[8] उठाया था कि सर याद आया ॥

◇ ◇ ◇

हुई ताख़ीर[9] तो कुछ बाइसे-ताख़ीर[10] भी था ।
आप आते थे मगर कोई इनागीर[11] भी था ॥
तुम से बेजा है मुझे अपनी तबाही का गिला ।
इस में कुछ शायबा-ए-खूबी-ए-तक़दीर[12] भी था ॥

---

१. अभी २. पथ ३. स्वर्ग का दरबान ४. स्वर्ग ५. फ़र्याद करने का साहस ६. खोया हुआ दिल ७. जंगल ८. पत्थर (इस शेर का भावार्थ यह है कि मैं बचपन ही से आशिक़-मिज़ाज हूँ) ९. देर १०. देर का कारण ११. रोकने वाला १२. भाग्य का हाथ

क़ैद में थी तेरे वहशी को वही ज़ुल्फ़ की याद।
हां कुछ इक रंजे-गिरांबारी-ए-ज़ंजीर[1] भी था॥
यूसुफ़[2] उसको कहूं और कुछ न कहे, ख़ैर हुई।
गर बिगड़ बैठे तो मैं लायक़े-ताज़ीर[3] भी था॥
हम थे मरने को खड़े पास न आया न सही।
आख़िर उस शोख़ के तरकश में कोई तीर भी था?
पकड़े जाते हैं फ़रिशतों के लिखे पर नाहक़।
आदमी कोई हमारा दमे-तहरीर[4] भी था?
रेख़ता[5] के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो 'ग़ालिब'।
कहते हैं अगले ज़माने में कोई 'मीर'[6] भी था॥

◇ ◇ ◇

तू दोस्त किसी का भी सितमगर न हुआ था।
औरों पे है वो ज़ुल्म जो मुझ पर न हुआ था॥

---

१. बोझल ज़ंजीर का दुख (ज़ुल्फ़ के सम्बन्ध से ज़ंजीर का ज़िक्र आया है।) २. बहुत सुन्दर (ज़ुलेखा ने यूसुफ़ को बाज़ार से एक दास के रूप में खरीदा था —यहां उसी ओर संकेत है कि मैंने उसे दास कह दिया!) ३. दंड के योग्य ४. (दण्ड की आज्ञा) लिखते समय ५. उर्दू भाषा का पुराना नाम ६. एक प्रसिद्ध उर्दू शायर

छोड़ा महे-नख़शब की तरह दस्ते-क़ज़ा ने।
ख़ुरशीद हनोज़ उसके बराबर न हुआ था[1]।

◇ ◇ ◇

आईना देख अपना सा मुंह लेके रह गये।
साहब को दिल न देने पे कितना ग़रूर था॥
क़ासिद को अपने हाथ से गरदन न मारिये।
उसकी ख़ता नहीं थी ये मेरा क़ुसूर था॥

◇ ◇ ◇

अर्ज़े-नियाज़े-इश्क़ के क़ाबिल[2] नहीं रहा।
जिस दिल पे मुझ को नाज़ था वो दिल नहीं रहा॥
मरने की ऐ दिल ! और ही तदबीर कर कि मैं।
शायाने - दस्तो - बाज़ुए - क़ातिल[3] नहीं रहा॥
गो मैं रहा रहीने - सितम - हाए - रोज़गार[4]।
लेकिन तेरे ख़याल से ग़ाफ़िल नहीं रहा॥
बेदादे - इश्क़ से नहीं डरता मगर 'असद'।
जिस दिल पे नाज़ था मुझे वो दिल नहीं रहा॥

◇ ◇ ◇

---

१. एक बनावटी चांद का नाम जो कुएँ से उभर कर चारों ओर प्रकाश फैलाता था, लेकिन उसका प्रकाश अधिक दूर न जाता था। 'ग़ालिब' फ़र्माते हैं कि सृष्टि तथा नाश करने वाले हाथ ने सूरज को बनाना शुरू किया लेकिन उसका प्रकाश तेरे सौन्दर्य के प्रकाश के बराबर न हुआ था कि उसे बनाना छोड़ दिया और वह 'महे-नख़शब' की तरह अधूरा रह गया। २. इश्क़ की सेवा करने के योग्य ३. क़ातिल (माशूक़) के हाथ और बाँह (से मरने) के क़ाबिल ४. संसार के दुख झेलता रहा।

ज़िक्र उस परीवश[1] का और फिर बयां अपना।
बन गया रक़ीब[2] आख़िर था जो राज़दां[3] अपना॥
मै वो क्यों बहुत पीते बज़्मे-ग़ैर में यारब।
आज ही हुआ मन्ज़ूर उनको इम्तिहां अपना॥
मंज़र[4] इक बुलंदी पर और हम बना सकते।
अर्श[5] से इधर होता काश कि मकां अपना॥
दे वो जिस क़दर ज़िल्लत हम हंसी में टालेंगे।
बारे आशना निकला उनका पासबां अपना[6]॥
दर्दे - दिल लिखूं कब तक जाऊं उनको दिखला दूं।
उंगलियां फ़िगार[7] अपनी ख़ामा खूंचकां[8] अपना॥
घिसते-घिसते मिट जाता आपने अबस बदला।
नंगे - सिजदा से मेरे संगे - आस्तां अपना[9]॥
ता करे न ग़म्माज़ी[10], कर लिया है दुश्मन को।
दोस्त की शिकायत में हमने हमज़बां अपना॥
हम कहां के दाना[11] थे किस हुनर में यकता थे।
बेसबब हुआ 'ग़ालिब' दुश्मन आस्मां अपना॥

◇ ◇ ◇

---

१. परी जैसा सौन्दर्य रखने वाला माशूक़ २. प्रतिद्वन्द्वी ३. भेदी ४. दृश्य ५. आठवाँ आकाश (सबसे ऊँचा स्थान) ६. संयोग से उनका चौकीदार हमारा परिचित निकला। ७. घायल ८. खून टपकाता हुआ क़लम ९. मेरे बार-बार माथा टेकने से आपकी दहलीज़ का पत्थर स्वयं ही घिस जाता, आपने व्यर्थ में उसे बदला। १०. चुग़ली न खाये इसलिए ११. बुद्धिमान

रहमत अगर क़बूल करे क्या बईद है।
शरमिंदगी से उज़्र न करना गुनाह का[1] ॥
मक़तल को किस निशात से जाता हूं मैं कि है।
पुर-गुल खयाले-ज़ख़्म से दामन निगाह का[2] ॥

◇ ◇ ◇

जौर[3] से बाज़ आए पर बाज़ आयें क्या ?
कहते हैं हम तुझ को मुंह दिखलायें क्या ॥
रात दिन गर्दिश में हैं सात आस्मां।
हो रहेगा कुछ न कुछ घबरायें क्या ?
लाग हो तो उसको हम समझें लगाव।
जब न हो कुछ भी तो धोखा खायें क्या ?
हो लिये क्यों नामाबर के साथ-साथ।
यारब अपने ख़त को हम पहुंचायें क्या ?
उम्र भर देखा किए मरने की राह।
मर गये पर देखिये दिखलायें क्या ?
पूछते हैं वो कि 'ग़ालिब' कौन है।
कोई बतलाओ कि हम बतलायें क्या ?

◇ ◇ ◇

---

१. पापों की लज्जा से यदि पापों का कोई कारण प्रस्तुत न करूँ तो असम्भव नहीं कि कृपानिधान उस लज्जा को पर्याप्त समझकर मुझे क्षमा कर दे। २. बधस्थान में जो घाव आयेंगे उनके विचारमात्र से मेरी नज़र का दामन फूलों से भर गया है इसलिए मैं बहुत प्रसन्नता से बध-स्थान की ओर जा रहा हूँ (माशूक़ के हाथों मरने)। ३. जुल्म

इशरते-क़तरा है[1] दरिया में फ़ना हो जाना।
दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना॥
तुझ से क़िस्मत में मेरी सूरते-क़ुफ़्ले-अबजद[2]।
था लिखा बात के बनते ही जुदा हो जाना॥
अब जफ़ा से भी हैं महरूम हम अल्ला-अल्ला।
इस क़दर दुश्मने-अरबाबे-वफ़ा हो जाना[3]॥
ज़ोफ़ से गिरया मुबद्दल ब-दमे-सर्द हुआ।
बावर आया हमें पानी का हवा हो जाना[4]॥
है मुझे अब्रे-बहारी[5] का बरस कर खुलना।
रोते-रोते ग़मे-फ़ुरक़त में[6] फ़ना हो जाना॥
बख़्शे है जलवा-ए-गुल ज़ौक़े-तमाशा 'ग़ालिब'।
चश्म को चाहिये हर रंग में वा हो जाना[7]॥

◇ ◇ ◇

---

१. बूंद की सफलता (सुख) इसी में है २. एक ऐसे ताले की तरह जिसमें 'क' 'ख,' आदि अक्षर खुदे होते हैं। उन अक्षरों को एक खास क्रम से मिलाकर एक शब्द बनायें तो ताला खुल जाता है। ३. वफ़ादारों के ऐसे शत्रु हो गये कि अब उन्हें अपने अत्याचार के भी योग्य नहीं समझते। ४. दुर्बलता के कारण हम रो भी नहीं सकते, इसलिए हमारा रोना ठंडी आहों में परिवर्तित हो गया है। ऐसा हो जाने से हमें विश्वास हो गया कि तत्व अपना रूप बदल देते हैं, पानी हवा में तबदील हो सकता है। ५. बसन्त-ऋतु का बादल ६. विछोह के ग़म में ७. फूलों की बहार सबको सैर करने का निमंत्रण देती है, यहाँ तक कि स्वयं फूल आँख बनकर वे सुन्दर दृश्य देखता है। इसलिए परख रखने वाली आँख को चाहिए कि हर समय खुली रहे।

रदीफ़ 'ते' (त)

ऐ दिले-नाआक़बत-अंदेश ज़ब्ते-शौक़ कर।
कौन ला सकता है ताबे-जलवा-ए-दीदारे-दोस्त[1] ॥
इश्क़ में बेदादे-रश्के-ग़ैर ने[2] मारा मुझे।
कुश्ता-ए-दुश्मन हूं आख़िर गरचे था बीमारे-दोस्त[3]॥
ग़ैर यूं करता है मेरी पुरसिश[4] उसके हिज्र[5] में।
बेतकल्लुफ़ दोस्त हो जैसे कोई ग़मख़्वार दोस्त ॥
ताकि मैं जानूं कि है उसकी रसाई वां तलक।
मुझ को देता है पयामे-वादा-ए-दीदारे-दोस्त[6] ॥
चुपके-चुपके मुझ को रोते देख पाता है अगर।
हंस के करता है बयाने-शोख़ी-ए-गुफ़्तारे-दोस्त[7] ॥

◇ ◇ ◇

१. ऐ परिणाम न सोचने वाले दिल ! सब्र कर। यार के जलवे को कोई सहन नहीं कर सकता। २. प्रतिद्वन्द्वी पर की जाने वाली कृपाओं के प्रति मेरी ईर्ष्या ने ३. मैं यद्यपि माशूक़ के प्रेम का रोगी था लेकिन मरा शत्रु के हाथों ४. पूछताछ ५. विछोह ६. माशूक़ के दर्शन देने के वायदे का संदेश ७. माशूक़ की शोख़ी भरी बातों की चर्चा।

रदीफ़ 'जीम' (ज)

लो हम मरीज़े-इश्क़ के तीमारदार हैं।
अच्छा अगर न हो तो मसीहा का क्या इलाज[1] ?

◇ ◇ ◇

रदीफ़ 'दाल' (द)

हुस्न ग़मज़े की कशाकश से छुटा मेरे बाद।
बारे आराम से हैं अहले-जफ़ा मेरे बाद[2] ॥
शमअ़ बुझती है तो उसमें से धुआं उठता है।
शोला-ए-इश्क़ सियाहपोश हुआ[3] मेरे बाद ॥
खूं है दिल खाक में अहवाले-बुतां पर यानी।
उनके नाखुन हुए मुहताजे-हिना मेरे बाद[4] ॥

---

१. चिकित्सक को क्या दण्ड मिलेगा ? २. जब तक मैं जीवित था वे मुझे मोहित करने के लिए हर समय भ्रू-विलास का अभ्यास करते रहते थे। यह अच्छा हुआ कि मेरे मरने के बाद उन्हें इस अभ्यास (के कष्ट से) मुक्ति मिल गई। ३. इश्क़ के शोले ने काला मातमी लिबास ओढ़ लिया। ४. जब मैं जीवित था तो वे मेरे खून के रंग को महँदी के रंग से अधिक शोख समझकर उससे हाथ रंगा करते थे। अब मरने के बाद मुझे यह दुख खाये जाता है और इसी दुख से मिट्टी के नीचे मेरा दिल खून हो रहा है कि अब उनके नाखुन महँदी के आश्रित हो गये हैं।

ग़म से मरता हूँ कि इतना नहीं दुनिया में कोई।
कि करे ताज़ियते-मेहरो-वफ़ा[1] मेरे बाद॥
आए है बेकसी-ए-इश्क़[2] पे रोना 'ग़ालिब'।
किस के घर जायेगा सैलाबे-बला[3] मेरे बाद?

◇ ◇ ◇

रदीफ़ 'रे' (र)

नज़र में खटके है बिन तेरे घर की आबादी।
हमेशा रोते हैं हम देख कर दरो-दीवार[4]॥

◇ ◇ ◇

घर जब बना लिया तेरे दर पर कहे बग़ैर।
जानेगा अब भी तू न मेरा घर कहे बग़ैर॥
कहते हैं जब रही न मुझे ताक़ते-सुख़न[5]।
जानूँ किसी के दिल की मैं क्योंकर कहे बग़ैर॥
काम उस से आ पड़ा है कि जिस का जहान में।
लेवे न कोई नाम सितमगर कहे बग़ैर॥
जी में ही कुछ नहीं है हमारे, वगरना हम।
सर जाये या रहे, न रहें पर कहे बग़ैर॥

---

१. प्रेम और प्रेम निभाने का शौक़ प्रकट करे, अर्थात् प्रेम और प्रेम निभाना मेरे साथ समाप्त हो गया। २. इश्क़ की विवशता ३. इश्क़-जैसी बला की बाढ़ ४. दरवाज़े, दीवारें ५. वाक्-शक्ति

छोड़ूंगा मैं न उस बुते-काफ़िर का पूजना।
छोड़े न ख़ल्क़[1] गो मुझे काफ़िर कहे बग़ैर॥
मक़सद है नाज़ो-ग़मज़ा वले गुफ़्तगू में काम।
चलता नहीं है दशना-ओ-ख़ंजर कहे बग़ैर[2]॥
हरचंद हो मुशाहिदा-ए-हक़[3] की गुफ़्तगू।
बनती नहीं है बादा-ओ-साग़र[4] कहे बग़ैर॥
बहरा हूं मैं तो चाहिये दूना हो इल्तफ़ात[5]।
सुनता नहीं हूं बात मुकर्रर[6] कहे बग़ैर॥
'ग़ालिब' न कर हुज़ूर में तू बार-बार अर्ज़।
ज़ाहिर है तेरा हाल सब उन पर कहे बग़ैर॥

◇ ◇ ◇

क्यों जल गया न ताबे-रुख़े-यार[7] देखकर।
जलता हूँ अपनी ताक़ते-दीदार[8] देखकर॥
आतिश-परस्त[9] कहते हैं अहले-जहां[10] मुझे
सरगर्म नाला-हाए-शररबार देखकर[11]॥
क्या आबरू-ए-इश्क़ जहां आम हो जफ़ा।
रुकता हूँ तुमको बेसबब आज़ार[12] देखकर॥

---

१. संसार २. तात्पर्य तो भ्रू-विलास से है लेकिन बातचीत में उसे 'खंजर' कहे बिना बात नहीं बनती ३. यथार्थ ४. मदिरा और प्याला ५. कृपा (प्रेम) ६. दोबारा ७. माशूक़ के चेहरे की दीप्ति ८. देखने की शक्ति ९. आग का पुजारी १०. संसार वाले ११. हर समय आग बरसाने वाला मेरा आर्तनाद देखकर १२. बिना कारण सताने वाला

आता है मेरे क़त्ल को पर जोशे-रश्क से।
मरता हूं उसके हाथ में तलवार देखकर[1] ॥
जुन्नार[2] बांध सबहा-ए-सद-दाना[3] तोड़ डाल।
रहरौ[4] चले है राह को हमवार देखकर॥
इन आबलों से[5] पाँव के घबरा गया था मैं।
जी खुश हुआ है राह को पुरख़ार[6] देखकर॥
सर फोड़ना वो 'ग़ालिबे'-शोरीदा-हाल का[7]।
याद आगया मुझे तेरी दीवार देखकर॥

◇ ◇ ◇

है बसकि हर-एक उन के इशारे में निशाँ और[8]।
करते हैं मुहब्बत तो गुज़रता है गुमां[9] और॥
यारब वो न समझे हैं न समझेंगे मेरी बात।
दे और दिल उनको जो न दे मुझको ज़बाँ और॥
तुम शहर में हो तो तुम्हें क्या ग़म? जब उठेंगे।
ले आयेंगे बाज़ार से जाकर दिलो-जाँ और॥
हरचंद सुबक-दस्त हुए बुत-शिकनी में।
हम हैं तो अभी राह में है संगे-गिरां और[10]॥

---

१. वह मेरे क़त्ल को आरहा है लेकिन मैं इस ईर्षा में मरा जा रहा हूँ कि जिस हाथ से उन्होंने तलवार पकड़ रखी है,वह मेरी गरदन में पड़ा होना चाहिये था। २. जनेऊ ३. सौ दानों वाली माला ४. पथिक ५. छालों से ६. कंटीला ७. पागल 'ग़ालिब' का ८. चूंकि उनके हर नाज़ में अनोखापन होता है। ९. सन्देह १०. बुतों को तोड़ने में यद्यपि हम निपुण हो चुके हैं किन्तु जब तक मैं हूँ तब तक तो यूं समझो कि ईश्वरोपासना के मार्ग में एक बहुत बड़ा पत्थर अभी शेष है।

है ख़ूने-जिगर जोश में दिल खोल के रोता।
होते जो कई दीदा-ए-ख़ूंनाबा फ़िशां और[1] ॥
लेता, न अगर दिल तुम्हें देता, कोई दम चैन।
करता, जो न मरता, कोई दिन आहो-फ़ुग़ाँ[2] और ॥
पाते नहीं जब राह तो चढ़ जाते हैं नाले।
रुकती है मेरी तबअ़[3] तो होती है रवां और ॥
हैं और भी दुनियां में सुख़नवर[4] बहुत अच्छे।
कहते हैं कि 'ग़ालिब' का है अंदाज़े-बयाँ और ॥

◇ ◇ ◇

जुनूं की दस्तगीरी किस से हो गर हो न उरयानी।
गरेबां चाक का हक़ हो गया है मेरी गरदन पर[5] ॥
'असद' बिसमिल[6] है किस अंदाज़ का क़ातिल से कहता है।
कि मश्क़े-नाज़ कर ख़ूने-दो-आलम मेरी गरदन पर[7] ॥

◇ ◇ ◇

---

१. ख़ून रोने वाली कई आँख होतीं २. आर्तनाद ३. तबियत ४. शायर ५. नग्नता ही से उन्माद की सहायता हो सकती है। मैंने गरेबां फाड़ा और नंगा हो गया। फटे हुए गरेबां का उपकार मेरी गरदन पर है, क्योंकि उसी के कारण मैं उन्माद की सहायता कर सका। ६. घायल ७. और निर्भय होकर (अपने नाज़ से) लोगों को मारने का अभ्यास जारी रख। बेशक तू दोनों संसारों के वध का ख़ून मेरी गरदन पर डाल दे।

सितमकश मसलहत से हूँ कि खूबां तुझ पे आशिक़ हैं।
तकल्लुफ़ बरतरफ़ मिल जायेगा तुझ-सा रक़ीब आख़िर[1] ॥

◇ ◇ ◇

❀ लाज़िम[2] था कि देखो मेरा रस्ता कोई दिन और।
तनहा गए क्यों अब रहो तनहा कोई दिन और ॥

मिट जाएगा सर गर तेरा पत्थर[3] न घिसेगा।
हूँ दर पे तेरे नासिया-फ़रसा[4] कोई दिन और ॥

आए हो कल और आज ही कहते हो कि जाऊँ।
माना कि हमेशा नहीं अच्छा, कोई दिन और ॥

जाते हुए कहते हो क़यामत को मिलेंगे।
क्या खूब ! क़यामत का है गोया कोई दिन और ॥

तुम माहे-शबे-चारदहम[5] थे मेरे घर के।
फिर क्यों न रहा घर का वो नक़्शा कोई दिन और ॥

नादां हो जो कहते हो कि क्यों जीते हो 'ग़ालिब'।
क़िस्मत में है मरने की तमन्ना कोई दिन और ॥

◇ ◇ ◇

---

१. मैं अपने हित ही के लिए तुम्हारे जुल्म सहन कर रहा हूँ क्योंकि बहुत से हसीन तुझ पर आशिक़ हैं और वे सब मेरे प्रतिद्वन्द्वी हैं। उनमें से कोई मेरा मित्र बन जायेगा और मुझे तुझ-सा सुन्दर प्रतिद्वन्द्वी मिल जायेगा। अर्थात तू नहीं मिलता न सही, तुझ-सा सुन्दर प्रतिद्वन्द्वी तो मिल जायेगा। २. आवश्यक ३. क़ब्र का पत्थर ४. माथा रगड़ रहा हूँ ५. पूर्णिमा का चांद

❀ मिर्ज़ा 'ग़ालिब' ने यह ग़ज़ल अपने प्रिय दत्तक पुत्र 'आरिफ़' के देहांत पर लिखी थी।

रदीफ़ 'ज़े' (ज़)

न गुले-नग़मा हूँ न पर्दा-ए-साज़[1] ।
मैं हूँ अपनी शिकस्त की आवाज़ ॥
तू और आराइशे - ख़मे - काकुल ।
मैं और अंदेशा-हाए - दूरो-दराज़[2] ॥
है गिरफ़्तारे - उल्फ़ते - सय्याद ।
वरना बाक़ी है ताक़ते-परवाज़[3] ॥

रदीफ़ 'सीन' (स)

मुंद गईं खोलते ही खोलते आंखें है, है ।
खूब वक़्त आए तुम इस आशिक़े-बीमार के पास ॥
मैं भी रुक-रुक के न मरता जो ज़बां के बदले[4] ।
दशना इक तेज़ सा होता मेरे ग़मख़्वार के पास[5] ॥

---

१. मेरा अस्तित्व कोई साज़ नहीं है जिस से संगीत फूल बन-बनकर निकलता हो २. तू हर समय अपने उलझे केश संवारता रहता है और मुझे यह खटका सता रहा है कि न जाने अब कितने प्रेमियों की भीड़ तेरे चारों ओर एकत्रित हो जाएगी । ३. मैं शिकारी (सांसारिक संबन्ध) के प्रेम में ग्रस्त हूँ इसलिए उड़ना नहीं चाहता, यों मुझ में उड़ने की शक्ति अभी मौजूद है । ४. ज़बां के बदले—उपदेशों की भरमार के बदले ५. इससे अच्छा था कि मेरे शुभचिन्तक के पास एक छुरी होती, जिससे वह एकदम मुझे मार डालता ।

दहने-शेर[1] में जा बैठिये लेकिन ऐ दिल।
न खड़े होजिये ख़ूबाने-दिल-आज़ार के पास[2] ॥
मर गया फोड़ के सर 'ग़ालिबे'-वहशी है, है।
बैठना उसका वो आकर तेरी दीवार के पास ॥

◇ ◇ ◇

रदीफ़ 'काफ़' (क)

मुझको अरज़ानी रहे तुझको मुबारिक हो जियो।
नाला-ए-बुलबुल का दर्द और खंदा-ए-गुल का नमक[3]॥
दाद देता है मेरे ज़ख्मे-जिगर की वाह, वाह।
याद करता है मुझे देखे है वो जिस जा नमक[4] ॥
याद हैं वो दिन तुझे 'ग़ालिब' कि वजदे-ज़ौक़[5] में।
ज़ख्म से गिरता तो मैं पलकों से चुनता था नमक ॥

◇ ◇ ◇

---

१. शेर के मुँह में २. दिल दुखाने वाले हसीनों के पास ३. ऐ मित्र मुझे बुलबुल का आर्तनाद प्राप्त होता रहे और तुझे फूलों की नमकीन (सुन्दर) हँसी (माशूक़ की उपेक्षा पर व्यंग है)। ४. याद करने का कारण यह है कि वह सदैव मेरे घावों पर नमक छिड़कता रहा है। ५. प्रेमोन्माद

आह को चाहिये इक उम्र असर होने तक ।
कौन जीता है तेरी ज़ुल्फ़ के सर होने तक[1] ॥

दाम हर मौज में है, हल्क़ा-ए-सदकामे-नहंग ।
देखें क्या गुज़रे है क़तरे पे गुहर होने तक[2] ॥

आशिक़ी सब्र-तलब और तमन्ना बेताब ।
दिल का क्या रंग करूं ख़ूने-जिगर होने तक[3] ॥

हम ने माना कि तग़ाफ़ुल[4] न करोगे हरगिज़ ।
ख़ाक हो जाएंगे हम तुम को ख़बर होने तक ॥

ग़मे-हस्ती का 'असद' किस से हो जुज़ मर्ग[5] इलाज ।
शमअ़ हर रंग में जलती है सहर[6] होने तक ॥

◇ ◇ ◇

रदीफ़ 'गाफ़' (ग)

आता है दाग़े-हसरते-दिल का शुमार याद[7] ।
मुझ से मेरे गुनह का हिसाब ऐ ख़ुदा न मांग ॥

---

१. सुलझने तक २. हर लहर एक जाल है और उस जाल के फंदे बहुत से मगरों की तरह मुँह खोले हुए हैं । देखें मोती बनने तक एक बूँद पर क्या-क्या विपत्तियाँ टूटती हैं । ३. इश्क़ में धैर्य से ही सफलता मिल सकती है, किन्तु आकांक्षा कहती है कि तुरन्त सफलता हो जाए । जिगर के खून होने अर्थात् मृत्यु होने तक दिल को किस तरह संभालूं ? ४. उपेक्षा ५. मृत्यु के अतिरिक्त ६. सुबह ७. मन में जितनी भी पापयुक्त आकांक्षाओं ने जन्म लिया वे पूर्ण न हुईं, वे सब हसरतों का रूप धारण कर गईं । उनकी संख्या मुझे याद आती है ।

रदीफ़ 'मीम' (म)

मुझको दियारे-ग़ैर[1] में मारा वतन से दूर।
रख ली मेरे ख़ुदा ने मेरी बेकसी की शर्म ॥

◇ ◇ ◇

रदीफ़ 'नून' (न)

वो फ़िराक़[2] और वो विसाल[3] कहां ?
वो शबो-रोज़ो-माहो-साल[4] कहां ?
थी वो इक शख़्स के तसव्वुर[5] से।
अब वो रअ़नाई-ए-ख़याल[6] कहां ?
ऐसा आसां नहीं लहू रोना।
दिल में ताक़त जिगर में हाल[7] कहां ?
हम से छूटा क़मारख़ाना-ए-इश्क़[8]।
वां जो जायें गिरह में माल कहां ?
फ़िक्रे-दुनियां[9] में सर खपाता हूं।
मैं कहां और ये वबाल कहां ?

◇ ◇ ◇

---

१. परदेस २. बिछोह ३. मिलन ४. रात, दिन, महीने, साल ५. कल्पना ६. विचारों की सुन्दरता ७. हालत, शक्ति ८. इश्क़ का जुआखाना ९. संसार की चिन्ताएं

की वफ़ा हम से तो ग़ैर उसको जफ़ा कहते हैं।
होती आई है कि अच्छों को बुरा कहते हैं॥

आज हम अपनी परीशानी-ए-ख़ातिर[1] उनसे।
कहने जाते तो हैं पर देखिए क्या कहते हैं॥

अगले वक़्तों के हैं ये लोग इन्हें कुछ न कहो।
जो मै-ओ-नग़मा को अंदोह-रुबा कहते हैं[2]॥

है परे सरहदे-इदराक से अपना मसजूद।
क़िबला को अहले-नज़र क़िबलानुमा कहते हैं[3]॥

इक शरर[4] दिल में है, इससे कोई घबराएगा क्या?
आग मतलूब[5] है हमको जो हवा कहते हैं॥

देखिये लाती है उस शोख़ की नख़वत[6] क्या रंग?
उसकी हर बात पे हम नामे-ख़ुदा[7] कहते हैं॥

◇ ◇ ◇

आबरू क्या ख़ाक उस गुल की जो गुलशन में नहीं।
है गरेबां नंगे-पैराहन जो दामन में नहीं[8]॥

---

१. परीशानी २. शराब और संगीत को ग़म दूर करने के साधन बताते हैं—भला वास्तविक ग़म इन चीज़ों से कहाँ दूर हो सकता है? ३. नमाज़ काबे की ओर मुँह करके पढ़ी जाती है। ग़ालिब कहते हैं कि काबा तो केवल (कम्पास की) सूई-मात्र है जो रास्ता दिखाती है। सिजदे का वास्तविक स्थान तो काबे और बुद्धि से बहुत परे है। ४. चिंगारी ५. चाहिये ६. गर्व ७. सुबहान अल्ला ८. जो गरेबां धज्जी-धज्जी होकर दामन में न आ रहे वह कुर्ते के लिए एक कलंक है।

ज़ोफ़[1] से ऐ गिरया[2] कुछ बाक़ी मेरे तन में नहीं।
रंग होकर उड़ गया जो ख़ूं कि दामन में नहीं॥
रौनक़े-हस्ती है इश्क़े-ख़ाना-वीरां-साज़ से।
अंजुमन बेशमअ़ है गर बर्क़ खिरमन में नहीं[3]॥
ज़ख़्म सिलवाने से मुझपर चाराजोई का है तान[4]।
ग़ैर समझा है कि लज़्ज़त ज़ख़्मे-सोज़न में नहीं[5]॥
हो फ़िशारे-ज़ोफ़ में क्या नातवानी की नमूद[6]।
क़द[7] के झुकने की भी गुंजाइश मेरे तन में नहीं॥

◇ ◇ ◇

अहदे से मदह-नाज़ के बाहर न आ सका[8]।
गर इक अदा हो तो उसे अपनी क़ज़ा[9] कहूँ॥
ज़ालिम मेरे गुमां[10] से मुझे मुनफ़इल न चाह[11]।
है, है, ख़ुदा-नकरदा[12] तुझे बेवफ़ा कहूँ॥

◇ ◇ ◇

---

१. कमज़ोरी २. आर्तनाद ३. संसार में जो चहल-पहल दिखाई देती है वह घर को वीरान बना देने वाले इश्क़ ही की देन है। खलियान में यदि बिजली नहीं (हृदय में यदि प्रेम नहीं) तो वह एक ऐसी सभा है जिसमें दीपक का प्रकाश न हो। ४. इलाज कराने का ताना ५. वह यह समझता है कि सुई से घाव सिलवाकर मैं इलाज करा रहा हूँ (मैं तो अधिक घाव खाने के लिए सुई से घाव सिलवा रहा हूँ)। ६. शारीरिक दुर्बलता का प्रदर्शन कैसे करूँ? ७. शरीर ८. मैं उसकी अदाओं की पूरी प्रशंसा नहीं कर सका। ९. मृत्यु १०. भ्रम ११. लज्जित न कर १२. खुदा न करे!

मेहरबां होके बुला लो मुझे चाहे जिस वक़्त।
मैं गया वक़्त नहीं हूँ कि फिर आ भी न सकूं ॥
ज़ोफ़ में ताना-ए-अग़ियार का शिकवा क्या है[1] !
बात कुछ सर तो नहीं है कि उठा भी न सकूं ॥
ज़हर मिलता ही नहीं मुझको सितमगर, वरना।
क्या क़सम है तेरे मिलने की कि खा भी न सकूं ॥

◇ ◇ ◇

हम से खुल जाओ बवक़्ते-मै-परस्ती[2] एक दिन।
वरना हम छेड़ेंगे रखके उज़्रे-मस्ती[3] एक दिन ॥
ग़र्रा-ए-औजे-बिनाए-आलमे-इमकां न हो[4]।
इस बुलंदी के नसीबों में है पस्ती एक दिन ॥
क़र्ज़ की पीते थे मै लेकिन समझते थे कि हां।
रंग लायेगी हमारी फ़ाक़ा-मस्ती एक दिन ॥
नग़मा-हाए-ग़म[5] को भी ऐ दिल ग़नीमत जानिये।
बे-सदा[6] हो जायेगा ये साज़े-हस्ती[7] एक दिन ॥
धौल-धप्पा उस सरापा-नाज़ का शेवा न था।
हम ही कर बैठे थे 'ग़ालिब' पेशदस्ती[8] एक दिन ॥

◇ ◇ ◇

---

१. मेरी दुर्बलता को देखते हुए तुम प्रतिद्वन्द्वियों के ताने की शिकायत करते क्यों डरते हो ? २. शराब पीते समय ३. शराबी होने का बहाना करके ४. संसार की ऊँची-ऊँची इमारतों (अर्थात् संसार की उन्नति) पर घमंड न कर। ५. दुखों के गीत ६. बेआवाज़ ७. अस्तित्व का साज़ ८. छेड़-छाड़

हम पर जफ़ा से तर्के-वफ़ा का गुमां नहीं।
एक छेड़ है वगरना मुराद इम्तिहां नहीं[1] ॥
किस मुँह से शुक्र कीजिए इस लुत्फ़े-ख़ास का।
पुरसिश है और पाए-सुख़न दर्मियां नहीं[2] ॥
हमको सितम अज़ीज़, सितमगर को हम अज़ीज़।
नामेहरबां नहीं है, अगर मेहरबां नहीं ॥
बोसा नहीं न दीजिए, दुशनाम[3] ही सही।
आख़िर ज़बां तो रखते हो तुम गर दहां नहीं[4] ॥
ख़ंजर से चीर सीना अगर दिल न हो दोनीम[5]।
दिल में छुरी चुभो मिज़ा गर ख़ूंचकां नहीं[6] ॥
नुक़्सां नहीं जुनूँ में बला से हो घर ख़राब।
सौ गज़ ज़मीं के बदले बियाबां गिरां[7] नहीं ॥
कहते हो क्या लिखा है तेरी सरनविश्त[8] में।
गोया जबीं[9] पे सिजदा-ए-बुत का[10] निशां नहीं ॥
जां है बहाए बोसा वले क्यों कहे अभी।
'ग़ालिब' को जानता है कि वो नीमजाँ नहीं[11] ॥

---

१. उसे यह भ्रम नहीं है कि हम उसके अत्याचारों से तंग आकर उसे प्रेम करना छोड़ देंगे। यह तो केवल छेड़छाड़ है, हमारी परीक्षा नहीं ली जा रही है। २. मेरा हाल पूछ रहे हैं लेकिन ज़बां से नहीं केवल नज़रों से। ३. गाली ४. मुँह के छोटा होने का वर्णन है। ५. दो-टुकड़े ६. पलकें (आँखें) अगर खून नहीं रोतीं तो ७. महंगा ८. भाग्य ९. माथे पर १०. बुतों के आगे माथा रगड़ने का ११. चुम्बन का मूल्य जान है। माशूक अभी यह मूल्य क्यों मांगे ? उसे मालूम है कि यह अभी मरने वाला नहीं है। (इसलिए चुम्बन नहीं दिया कि वह मूल्य देने के योग्य है।)

मानअ़ - ए - दश्त-नवरदी कोई तदबीर नहीं[1] ।
एक चक्कर है मेरे पांव में ज़ंजीर नहीं ॥
शौक़ उस दश्त[2] में दौड़ाये है मुझको कि जहां ।
जादह ग़ैर-अज़-निगह-ए-दीदा-ए-तस्वीर नहीं[3] ॥
सर खुजाता है जहां ज़ख़्मे-सर अच्छा हो जाये ।
लज़्ज़ते-संग बा - अंदाज़ा - ए - तक़रीर नहीं[4] ॥

◇ ◇ ◇

राज़े - माशूक़ न रुसवा हो जाए ।
वरना मर जाने में कुछ भेद नहीं ॥
कहते हैं जीते हैं उम्मीद पे लोग ।
हमको जीने की भी उम्मीद नहीं ॥

◇ ◇ ◇

जहां तेरा नक़्शे - क़दम[5] देखते हैं ।
ख़याबां - ख़याबां इरम[6] देखते हैं ॥
बनाकर फ़क़ीरों का हम भेस 'ग़ालिब' ।
तमाशा - ए - अहले - करम[7] देखते हैं ॥

◇ ◇ ◇

---

१. कोई चीज़ मुझे जंगलों की ख़ाक छानने से नहीं रोक सकती । २. बियाबान ३. जहाँ पगडंडी भी आश्चर्य-चकित होकर चित्र की आँख की दृष्टि-रेखा बन गई है, अर्थात् है ही नहीं । ४. सिर का घाव जब अच्छा हो जाता है तो फिर खुजाने लगता हूँ । जो पत्थर सिर पर लगा था उसके आस्वाद को शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता । ५. पदचिह्न ६. बहिश्त की वाटिकायें ७. सखी लोगों का तमाशा—कौन कितना कृपालु है ।

मिलती है ख़ू - ए - यार से नार-इल्तिहाब[1] में ।
काफ़िर हूं गर न मिलती हो राहत अज़ाब[2] में ॥
कब से हूं क्या बताऊं जहाने - ख़राब में ।
शब - हाए - हिज्र को भी रखूं गर हिसाब में[3] ॥
ता[4] फिर न इन्तज़ार में नींद आए उम्र भर ।
आने का वादा कर गए आये जो ख़्वाब में ॥
क़ासिद के आते आते खत इक और लिख रखूं ।
मैं जानता हूँ जो वो लिखेंगे जवाब में ॥
मुझ तक कब उनकी बज़्म में आता था दौरे-जाम ।
साक़ी ने कुछ मिला न दिया हो शराब में ॥
जो मुनकिरे - वफ़ा[5] है फ़रेब उस पे क्या चले ।
क्यों बदगुमां हूँ दोस्त से दुश्मन के बाब में[6] ॥
मैं मुज़तरिब हूँ वस्ल में ख़ौफ़े-रक़ीब से[7] ।
डाला है तुमको वहम ने किस पेचोताब में ॥
'ग़ालिब' छुटी शराब पर अब भी कभी-कभी ।
पीता हूँ रोज़े - अब्रो - शबे - माहताब[8] में ॥

◇ ◇ ◇

१. माशूक़ की बुरी आदत नरक के भड़कते शोलों-ऐसी है। २. दुख ३. यदि विछोह की लम्बी रातों को भी हिसाब में लिख लूँ तो यह कहना बहुत कठिन है कि मैं कब से इस संसार में रह रहा हूँ। ४. ताकि ५. वफ़ा से इन्कारी ६. सम्बन्ध में ७. मैं संयोग के समय प्रतिद्वन्द्वी के भय से बेचैन हूँ कि कहीं वह ठीक संयोग के समय न आ निकले। ८. जिस दिन बादल हो, या जिस रात चांद निकला हुआ हो।

रौ में है रख़्शे-उम्र कहां देखिये थमे ।
ने हाथ बाग पर है न पा है रकाब में[1] ॥
इतना ही मुझ को अपनी हक़ीक़त से बुअ्द[2] है ।
जितना कि वहमे-ग़ैर[3] से हूँ पेचोताब में ॥
असले-शहूदो-शाहिदो-मशहूद एक हैं ।
हैरां हूँ फिर मुशाहिदा है किस हिसाब में[4] ?

◇ ◇ ◇

हैरां हूँ दिल को रोऊं कि पीटूं जिगर को मैं ।
मक़दूर[5] हो तो साथ रखूं नौहागर[6] को मैं ॥
छोड़ा न रश्क[7] ने कि तेरे घर का नाम लूं ।
हर इक से पूछता हूँ कि जाऊं किधर को मैं ॥
जाना पड़ा रक़ीब के दर पर हज़ार बार ।
ऐ काश ! जानता न तेरी रह-गुज़र को मैं ॥
है क्या जो कसके बांधिये मेरी बला डरे ।
क्या जानता नहीं हूँ तुम्हारी कमर को मैं ॥
लो वो भी कहते हैं कि ये बे-नंगो-नाम[8] है ।
ये जानता अगर तो लुटाता न घर को मैं ॥

---

१. आयु का घोड़ा इतना तेज़ दौड़ता है कि न तो लगाम हाथ में रही है न पैर रकाब में; देखें यह कहाँ जाकर थमता है। २. दूरी (अज्ञानता) ३. अवास्तविकता ४. देखना भी वही, देखने वाला भी वही और जिसे देखा जा रहा है वह भी वही। हैरान हूँ कि फिर 'देखना' क्या है। ५. सामर्थ्य ६. पेशावर रोने वाला ७. ईर्षा ८. निर्धन

चलता हूँ थोड़ी दूर हर इक तेज़-रौ के साथ[१] ।
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबर[२] को मैं ॥
ख़्वाहिश को अहमक़ों ने परस्तिश[३] दिया क़रार ।
क्या पूजता हूँ उस बुते-बेदादगर[४] को मैं ॥
फिर बेख़ुदी में भूल गया राहे-कूए-यार[५] ।
जाता वगरना एक दिन अपनी ख़बर को मैं ॥

◇ ◇ ◇

ज़िक्र मेरा ब - बदी भी उसे मंज़ूर नहीं ।
ग़ैर की बात बिगड़ जाए तो कुछ दूर नहीं ॥
शाहिदे-हस्ती-ए-मुतलक़ की कमर है आ़लम ।
लोग कहते हैं कि है, पर हमें मंज़ूर नहीं[६] ॥
मैं जो कहता हूँ कि हम लेंगे क़यामत में तुम्हें ।
किस रऊनत[७] से वो कहते हैं कि हम हूर नहीं ॥

◇ ◇ ◇

---

१. तेज़ चलने वाले के साथ २. पथ-प्रदर्शक ३. उपासना ४. ज़ालिम बुत (माशूक़) ५. यार की गली का रास्ता ६. खुदा एक माशूक़ है और यह संसार उसकी कमर है । लोग कहते हैं कि उसका अस्तित्व है लेकिन हम नहीं मानते, और इसलिए नहीं मानते कि माशूक़ की कमर नहीं होती (पतली कमर की उपमा के साथ तसव्वुफ़ की बात कही गई है) । ७. घमंड

कम नहीं वो भी खराबी में पे वुसअ़त[1] मालूम।
दश्त[2] में है मुझे वो ऐश कि घर याद नहीं॥
करते किस मुंह से हो ग़ुरबत[3] की शिकायत 'ग़ालिब'।
तुम को बेमेहरि-ए-याराने-वतन[4] याद नहीं॥

◇ ◇ ◇

दोनों जहान देके वो समझे ये खुश रहा।
यां आ पड़ी ये शर्म कि तकरार क्या करें?
थक-थक के हर मुक़ाम पे दो-चार रह गये।
तेरा पता न पायें तो नाचार क्या करें?
क्या शमअ़ के नहीं हैं हवाख़्वाह[5] अहले-बज़्म।
हो ग़म ही जांगुदाज़[6] तो ग़मख़्वार क्या करें?

◇ ◇ ◇

ये हम जो हिज्र[7] में दीवारो-दर को[8] देखते हैं।
कभी सबा[9] को कभी नामाबर[10] को देखते हैं॥
वो आयें घर में हमारे ख़ुदा की क़ुदरत है।
कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं॥
नज़र लगे न कहीं उसके दस्तो-बाज़ू को[11]।
ये लोग क्यों मेरे ज़ख़्मे-जिगर[12] को देखते हैं॥

◇ ◇ ◇

---

१. विशालता २. बियाबान ३. परदेस-निवास ४. देश निवासी मित्रों की निर्दयता ५. शुभचिंतक ६. जान को घुलाने वाला ७. विछोह ८. दीवारों और दरवाजों को ९. सुबह की ठंडी हवा (सबा को सब कवि संदेश-वाहक मानते हैं) १०. पत्र-वाहक ११. हाथों और बांहों को १२. दिल के घाव को (जो माशूक़ ने लगाया है)

नहीं कि मुझको क़यामत का एतक़ाद[1] नहीं।
शबे-फ़िराक़ से रोज़े-जज़ा ज़ियाद नहीं[2] ॥
जो आऊं सामने उनके तो मरहबा[3] न कहें।
जो जाऊं वां से कहीं को तो ख़ैरबाद[4] नहीं ॥
कभी जो याद भी आता हूँ मैं तो कहते हैं।
कि आज बज़्म में कुछ फ़ितना-ओ-फ़साद नहीं ॥
जहां में हो ग़मो-शादी बहम[5] हमें क्या काम।
दिया है हमको ख़ुदा ने वो दिल की शाद[6] नहीं ॥
तुम उनके वादे का ज़िक्र उनसे क्यों करो 'ग़ालिब'।
ये क्या कि तुम कहो और वो कहें कि याद नहीं ॥

◇ ◇ ◇

दायम[7] पड़ा हुआ तेरे दर पर नहीं हूँ मैं।
ख़ाक ऐसी ज़िंदगी पे कि पत्थर नहीं हूँ मैं ॥
क्यों गर्दिशे-मुदाम से[8] घबरा न जाए दिल।
इन्सान हूँ पियाला-ओ-साग़र नहीं हूँ मैं ॥
यारब ज़माना मुझको मिटाता है किसलिए।
लौहे-जहां पे हर्फ़े-मुकर्रर नहीं हूँ मैं[9] ॥
हद चाहिए सज़ा में उक़ूबत[10] के वास्ते।
आख़िर गुनहगार हूँ काफ़िर नहीं हूँ मैं ॥

◇ ◇ ◇

१. विश्वास २. प्रलय का दिन विछोह की रात से अधिक कष्ट-पूर्ण न होगा। ३. 'स्वागतम्' ४. 'ख़ैरबाद' विदा के समय बोलते हैं ५. दुख-सुख साथ-साथ हों ६. प्रसन्न ७. स्थायी-रूप से ८. तेरी तलाश में हर समय चक्कर काटने से ९. संसार-रूपी तख़्ती पर लिखा हुआ फ़ालतू शब्द नहीं हूँ। १०. दुख, सज़ा

सब कहां कुछ लाला-ओ-गुल[1] में नुमायां[2] हो गईं ।
खाक में क्या सूरतें होंगी कि पिनहां[3] हो गईं ॥
जूए-खूं[4] आँखों से बहने दो कि है शामे-फ़िराक़[5] ।
मैं ये समझूंगा कि शमअएँ दो फ़रोज़ां[6] हो गईं ॥
इन परीज़ादों से[7] लेंगे खुल्द[8] में हम इंतिक़ाम ।
क़ुदरते-हक़ से[9] यही हूरें अगर वां हो गईं ॥
नींद उसकी है, दिमाग़ उसका है, रातें उसकी हैं ।
तेरी ज़ुल्फ़ें जिस के बाज़ू पर परीशां हो गईं ॥
मैं चमन में क्या गया गोया दबिस्तां[10] खुल गया ।
बुलबुलें सुनकर मेरे नाले[11] ग़ज़ल-ख़्वां[12] हो गईं ॥
वो निगाहें क्यों हुई जाती हैं यारब दिल के पार ।
जो मेरी कोताही-ए-क़िस्मत से[13] मिज़गां[14] हो गईं ॥
वां गया भी मैं तो उनकी गालियों का क्या जवाब ।
याद थीं जितनी दुआयें, सरफ़े-दरबां[15] हो गईं ॥
हम मुवह्हिद[16] हैं हमारा केश[17] है तर्के-रसूम[18] ।
मिल्लतें[19] जब मिट गईं अजज़ा-ए-ईमां[20] हो गईं ॥

---

१. फूलों २. प्रकट ३. लुप्त ४. खून की नदी ५. विछोह की शाम है ६. ज्योतिर्मय ७. परी के बेटों (सुन्दर माशूकों) से ८. जन्नत ९. खुदा की कुदरत से १०. कविता-पाठ (राग की महफ़िल) ११. आर्तनाद १२. गाने लगीं १३. दुर्भाग्य से १४. पलकें १५. दरबान की भेंट १६. भगवान को एक मानने वाला १७. धर्म १८. परम्पराओं को छोड़ना १९. धर्म, जातियां २०. धर्म का अंग

रंज से ख़ूगर[1] हुआ इन्साँ तो मिट जाता है रंज।
मुश्किलें इतनी पड़ीं मुझ पर कि आसाँ हो गईं॥
बू ं ही गर रोता रहा 'ग़ालिब' तो ऐ अहले-जहां[2]।
देखना इन बस्तियों को तुम कि वीरां हो गईं॥

◇ ◇ ◇

दिल को नियाज़े-हसरते-दीदार[3] कर चुके।
देखा तो हम में ताक़ते-दीदार[4] भी नहीं॥
मिलना तेरा अगर नहीं आसां तो सहल है।
दुश्वार[5] तो यही है कि दुश्वार भी नहीं॥
बेइश्क़ उम्र कट नहीं सकती है और यां।
ताक़त बक़दरे-लज़्ज़ते-आज़ार भी नहीं[6]॥
इस सादगी पे कौन न मर जाए ऐ खुदा।
लड़ते हैं, और हाथ में तलवार भी नहीं॥
देखा 'असद' को खलवतो-जलवत में[7] बारहा।
दीवाना गर नहीं है तो हुशियार भी नहीं॥

◇ ◇ ◇

हुआ हूं इश्क़ की ग़ारतगरी[8] से शर्मिंदा।
सिवाये हसरते-तामीर[9] घर में ख़ाक नहीं॥

◇ ◇ ◇

---

१. अभ्यस्त २. दुनिया वालो ३. दर्शनों की अभिलाषा की भेंट ४. दर्शन करने की शक्ति ५. कठिन ६. इश्क़ में जो दुख उठाये जाते हैं उनका रसपान करने की भी शक्ति नहीं ७. एकांत में भी और जन-समूह में भी ८. तबाही ९. निर्माण की अभिलाषा

दिल ही तो है न संगो-खिश्त[1], दर्द से भर न आये क्यों ?
रोयेंगे हम हज़ार बार कोई हमें सताये क्यों ?
दैर नहीं, हरम नहीं, दर नहीं, आस्तां नहीं[2] ।
बैठे हैं रहगुज़र पे हम, कोई हमें उठाये क्यों ?
जब वो जमाले-दिलफ़रोज़ सूरते-मेहरे-नीमरोज़ ।
आप ही हो नज़्ज़ारा-सोज़, पर्दे में मुंह छुपाये क्यों[3] ?
क़ैदे-हयातो-बंदे-ग़म[4] अस्ल में दोनों एक हैं ।
मौत से पहले आदमी ग़म से नजात[5] पाये क्यों ?
हुस्न और उस पे हुस्नेज़न[6] रह गई बुलहवस[7] की शर्म ।
अपने पे एतमाद[8] है और को आज़माये क्यों ?
हां वो नहीं खुदा-परस्त[9] , जाओ वो बेवफ़ा सही ।
जिसको हो दीनो-दिल अज़ीज़[10] उसकी गली में जाए क्यों ?
'ग़ालिब'-ए-खस्ता के बग़ैर कौनसे काम बंद हैं ?
रोइये ज़ार-ज़ार क्या, कीजिए हाए-हाए क्यों ?

◇ ◇ ◇

रात के वक़्त मै पिये साथ रक़ीब को लिये ।
आए वो यां खुदा करे, पर न करे खुदा कि यूं ।।

---

१. ईंट-पत्थर २. न यह मंदिर है, न काबे की चारदीवारी, न दरवाज़ा है, न दहलीज़ ३. जब वह मन को प्रकाशमान करने वाला सौन्दर्य (माशूक) दोपहर के सूरज की तरह देखने की शक्ति को जलाकर रख देता है और किसी में उसे देखने या उसकी ओर आंख उठाने की शक्ति नहीं रहती, तो फिर उसे पर्दे में रहने की क्या आवश्यकता है ? ४. जीवन की क़ैद और ग़म का बंधन ५. मुक्ति ६. शुभ भ्रम ७. लालची ८. आत्म-विश्वास ९. आस्तिक १०. धर्म और दिल दोनों प्रिय हों

ग़ैर से रात क्या बनी ? ये जो कहा तो देखिये ।
सामने आन बैठना और ये देखना कि यूं ॥
मैंने कहा कि बज़्मे-नाज़ चाहिए ग़ैर से तही[१] ।
सुनके सितम-ज़रीफ़[२] ने मुझको उठा दिया कि यूं ॥
मुझसे कहा जो यार ने, जाते हैं होश किस तरह ।
देख के मेरी बेखुदी चलने लगी हवा कि यूं ॥
कब मुझे कूए-यार[३] में रहने की वज़अ[४] याद थी ।
आईनादार बन गई हैरते-नक़्शे-पा कि यूं[५] ॥

◇ ◇ ◇

रदीफ़ 'वाओ' (व, ओ)

वारस्ता[६] इससे हैं कि मुहब्बत ही क्यों न हो ।
कीजे हमारे साथ अदावत[७] ही क्यों न हो ॥
है मुझ को तुझ से तज़करा-ए-ग़ैर का गिला ।
हरचंद बर-सबीले-शिकायत ही क्यों न हो[८] ॥

---

१. आपकी महफ़िल ग़ैर (प्रतिद्वन्द्वी) से खाली होनी चाहिये २. जिसके अत्याचार में विनोद हो ३. यार की गली ४. ढंग ५. पदचिह्न ने मुझे बताया कि मिट्टी में मिलकर और महबूब के जलवे से आश्चर्य-चकित रह कर ६. स्वतंत्र ७. द्वेष, शत्रुता ८. तुमने प्रतिद्वन्द्वी की शिकायत की लेकिन मुझे तो यह शिकायत है कि तुमने उसका नाम ही क्यों लिया ?

पैदा हुई है कहते हैं हर दर्द की दवा।
यूं हो तो चारा-ए-ग़मे-उलफ़त[1] ही क्यों न हो॥
है आदमी बजाए-ख़ुद[2] इक महशरे-ख़याल[3]।
हम अंजुमन[4] समझते हैं, ख़लवत[5] ही क्यों न हो॥
मिटता है फ़ीते-फ़ुरसते-हस्ती का ग़म कहीं।
उम्रे-अज़ीज़ सरफ़े-इबादत ही क्यों न हो[6]॥
उस फ़ितना-ख़ू के दर से[7] अब उठते नहीं 'असद'।
इसमें हमारे सर पे क़यामत ही क्यों न हो[8]॥

◇ ◇ ◇

ख़ुदा शरमाए हाथों को कि रखते हैं कशाकश में।
कभी मेरे गरेबां को कभी जानां[9] के दामन को॥
ख़ुशी क्या, खेत पर मेरे अगर सौ बार अब्र[10] आवे।
समझता हूं कि ढूंढे है अभी से बर्क़[11] ख़िरमन[12] को॥
वफ़ादारी बशर्ते - उस्तुवारी असले - ईमां है।
मरे बुतख़ाने में तो काबे में गाड़ो बिरहमन को[13]॥

---

१. प्रेम के दुखों का इलाज २. स्वयं ३. विचारों का प्रलय उठाने वाला (हर समय विचारों में डूबा रहने वाला) ४. जनसमूह ५. एकांत ६. जीवन के छोटे से अवकाश के समाप्त हो जाने का ग़म नहीं मिट सकता, चाहे पूरी प्रिय आयु उपासना में व्यतीत कर दी जाये। ७. फ़ितने उठाने वाले के दरवाज़े पर से ८. प्रलय ही क्यों न आ जाये (विशेषता यह है कि प्रलय [क़यामत] में सबको उठना पड़ेगा)। ९. महबूब १०. बादल ११. बिजली १२. खलियान १३. जब ब्राह्मण अपनी पूरी आयु बुतख़ाने में (मूर्तिपूजा करते हुए) काट दे और वहीं मर जाये तो वह इस बात का पात्र है कि उसको काबे में दफ़न किया जाये, इसलिए कि उसने वफ़ादारी का पूरा-पूरा हक़ अदा कर दिया।

शहादत[1] थी मेरी क़िस्मत में जो दी थी ये ख़ू[2] मुझको।
जहां तलवार को देखा झुका देता था गरदन को॥
न लुटता दिन को तो कब रात को यूं बेख़बर सोता।
रहा खटका न चोरी का दुआ देता हूं रहज़न[3] को॥

◇ ◇ ◇

धोता हूं जब मैं पीने को उस सीमतन[4] के पांव।
रखता है ज़िद से खेंच के बाहर लगन के पांव॥
भागे थे हम बहुत, सो उसी की सज़ा ये है।
होकर असीर[5] दाबते हैं राहज़न[6] के पांव॥
मरहम की जुस्तजू में फिरा हूं जो दूर दूर।
तन से सवा फ़िगार[7] हैं इस ख़स्ता-तन के पांव॥
अल्ला रे ज़ौक़े - दश्त - नवर्दी[8] कि बादे-मर्ग[9]।
हिलते हैं खुद-ब-खुद मेरे अन्दर कफ़न के पांव॥
शब[10] को किसी के ख्वाब में आया न हो कहीं।
दुखते हैं आज उस बुते-नाज़ुक-बदन के पांव॥

◇ ◇ ◇

वां उसको हौले-दिल[11] है तो यां मैं हूं शर्मसार।
यानी ये मेरी आह की तासीर से न हो॥

◇ ◇ ◇

---

१. वीर-गति २. स्वभाव ३. डाकू ४. चांदी-जैसे बदन वाले महबूब के ५. बन्दी ६. रास्ते में लूटने वाला (डाकू) ७. ज़ख्मी ८. बियाबानों में घूमने का शौक़ ९. मृत्यु के बाद १०. रात ११. दिल डूबने की बीमारी

दिल को मैं और मुझे दिल महवे-वफ़ा[1] रखता है।
किस क़दर ज़ौक़े-गिरफ़्तारी-ए-हम[2] है हम को॥
जानकर कीजे तग़ाफ़ुल[3] कि कुछ उम्मीद भी हो।
ये निगाहे-ग़लत-अंदाज़[4] तो सम[5] है हम को॥
सर उड़ाने के जो वादे को मुकर्रर[6] चाहा।
हँस के बोले कि तेरे सर की क़सम है हमको॥

◇ ◇ ◇

तुम जानो तुम को ग़ैर से जो रस्मो-राह[7] हो।
मुझ को भी पूछते रहो तो क्या गुनाह हो॥
क्या वो भी बेगुनाह-कुश-ओ-हक़-नाशनास हैं।
माना कि तुम बशर नहीं खुरशीदो-माह हो[8]॥
उभरा हुआ नक़ाब में उनके है एक तार।
मरता हूं मैं कि ये न किसी की निगाह हो॥
जब मैकदा छुटा तो फिर अब क्या जगह की क़ैद।
मस्जिद हो मदरसा हो कोई ख़ानक़ाह हो॥

◇ ◇ ◇

गई वो बात कि हो गुफ़्तगू तो क्योंकर हो।
कहे से कुछ न हुआ फिर कहो तो क्योंकर हो ?

---

१. प्रेम में निमग्न २. प्रेम की पीड़ा में गिरफ़्तार रहने का शौक़ ३. बेपरवाही ४. भूल से पड़ने वाली नज़र ५. विष ६. दोबारा ७. सम्बन्ध ८. यह मान लिया कि तुम मानव नहीं हो, सूरज और चांद हो। लेकिन सूरज और चांद तो न किसी निरपराध का वध करते हैं, न किसी का हक़ छीनते हैं, फिर तुम में ये गुण क्यों हैं ?

हमारे ज़हन[1] में इस फ़िक्र का है नाम विसाल[2]।
कि गर न हो तो कहां जायें, हो तो क्योंकर हो ?
उलझते हो तुम अगर देखते हो आईना।
जो तुम से शहर में हों एक दो तो क्योंकर हो ?
जिसे नसीब हो रोज़े-सियाह[3] मेरा सा।
वो शख़्स दिन न कहे रात को तो क्योंकर हो ?

◇ ◇ ◇

किसी को दे के दिल कोई नवासंजे-फ़ुग़ां क्यों हो[4] ?
न हो जब दिल ही सीने में तो फिर मुंह में ज़ुबां क्यों हो ?
वो अपनी ख़ू[5] न छोड़ेंगे हम अपनी वज़्अ़[6] क्यों बदलें ?
सुबकसर[7] बन के क्या पूछें कि हम से सरगिरां[8] क्यों हो ?
किया ग़मख़्वार ने[9] रुसवा लगे आग इस मुहब्बत को।
न लाए ताब[10] जो ग़म की वो मेरा राज़दां[11] क्यों हो ?
वफ़ा कैसी, कहां का इश्क़, जब सर फोड़ना ठहरा।
तो फिर ऐ संगदिल[12] तेरा ही संगे-आस्तां[13] क्यों हो ?
क़फ़स[14] में मुझ से रूदादे-चमन[15] कहते न डर हमदम[16]।
गिरी है जिस पे कल बिजली वो मेरा आशियां[17] क्यों हो ?
ये फ़ितना आदमी की ख़ाना-वीरानी को क्या कम है।
हुए तुम दोस्त जिसके दुश्मन उसका आस्मां क्यों हो ?

---

१. मस्तिष्क २. मिलन ३. काला दिन (दुख-भरा जीवन) ४. आर्तनाद क्यों करे ? ५. आदत ६. ढंग ७. हीन ८. रुष्ट ९. दुख बांटने वाले ने १०. सहन न कर सके ११. भेदी १२. पत्थर-दिल १३. दहलीज़ का पत्थर १४. पिंजरा १५. बाग़ का वृत्तान्त १६. साथी १७. घौंसला

यही है आज़माना तो सताना किसको कहते हैं ?
उद्दू के हो लिये जब तुम तो मेरा इम्तिहां क्यों हो ?
कहा तुमने कि क्यों हो ग़ैर के मिलने में रुसवाई।
बजा कहते हो सच कहते हो फिर कहियो कि हां क्यों हो ?

◇ ◇ ◇

रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
हम-सुख़न[1] कोई न हो और हमज़बां[2] कोई न हो॥
बे-दरो-दीवार सा[3] एक घर बनाया चाहिये।
कोई हमसाया न हो और पासबां[4] कोई न हो॥
पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार[5]।
और अगर मर जाइये तो नौहाख़्वां[6] कोई न हो॥

◇ ◇ ◇

रदीफ़ 'ये' (ए-इ-ई)

ग़ैर के मर्ग[7] का ग़म किस लिए ऐ ग़ैरते-माह[8]।
हैं हवस-पेशा[9] बहुत वो न हुआ और सही॥
तुम हो बुत[10] फिर तुम्हें पिंदारे-ख़ुदाई[11] क्यों है ?
तुम ख़ुदावंद ही कहलाओ ख़ुदा और सही॥

१, २. बात करने वाला और बात समझने वाला ३. बिना दरवाज़े और दीवारों का ४. रक्षक ५. परिचर्या-कर्ता ६. रोने वाला ७. मृत्यु ८. चांद को शरमाने वाले ९. कामी १०. सौन्दर्य की मूर्ति ११. खुदा होने का गौरव (दावा)

कोई दुनिया में मगर बाग़ नहीं है वाइज़[1] ।
ख़ुल्द[2] भी बाग़ है ख़ैर आबो-हवा और सही ॥
मुझको वो दो कि जिसे खा के न पानी मांगूं ।
ज़हर कुछ और सही आबे-बक़ा[3] और सही ॥
क्यों न फ़िर्दौस[4] को दोज़ख़[5] में मिला लें यारब ।
सैर के वास्ते थोड़ी सी फ़ज़ा[6] और सही ॥

◇ ◇ ◇

मस्जिद के ज़ेरे-साया[7] ख़राबात[8] चाहिये ।
भौं पास आंख क़िबला-ए-हाजात[9] चाहिये ॥
आशिक़ हुए हैं आप भी एक और शख़्स पर ।
आख़िर सितम की कुछ तो मुकाफ़ात[10] चाहिये ॥
सीखे हैं मह-रुख़ों[11] के लिए हम मुसव्वरी[12] ।
तक़रीब[13] कुछ तो बहरे-मुलाक़ात[14] चाहिये ॥
मै से ग़रज़ निशात है किस रू-सियाह को[15] ।
एक-गूना बेख़ुदी[16] मुझे दिन-रात चाहिये ॥

◇ ◇ ◇

कटे तो शब कहें, काटे तो साँप कहलावे ।
कोई बताओ कि वो ज़ुल्फ़े-ख़म-ब-ख़म[17] क्या है ?

◇ ◇ ◇

---

१. 'धर्मोपदेशक २. स्वर्ग ३. अमृत ४. स्वर्ग ५. नरक ६. खुला स्थान ७. छाया में ८. शराब-ख़ाना ९. ऐ उपदेशक ! १०. बदला ११. चाँद-जैसे चेहरे वाले माशूकों के लिए १२. चित्रकारी १३. अवसर १४. मुलाक़ात के लिए १५. कौन काला चेहरा (मूर्ख) शराब से आनन्द प्राप्त करना चाहता है ? १६. ज़रा-सी आत्म-विस्मृति १७. पेचदार केश

है ग़नीमत कि ब-उम्मीद गुज़र जायेगी उम्र।
न मिले दाद मगर रोज़े-जज़ा[1] है तो सही॥
ग़ैर से देखिये क्या खूब निबाही उसने।
न सही हम से पर उस बुत में वफ़ा है तो सही॥
नक़ल करता हूँ उसे नामा-ए-एमाल[2] में मैं।
कुछ न कुछ रोज़े-अज़ल[3] तुमने लिखा है तो सही॥

◇ ◇ ◇

ता[4] हमको शिकायत की बाक़ी न रहे जा[5]।
सुन लेते हैं गो ज़िक्र हमारा नहीं करते॥
'ग़ालिब' तेरा अहवाल[6] सुना देंगे हम उनको।
वो सुन के बुला लें ये इजारा[7] नहीं करते॥

◇ ◇ ◇

घर में था क्या कि तेरा ग़म उसे ग़ारत करता।
वो जो रखते थे हम एक हसरते-तामीर[8] सो है॥

◇ ◇ ◇

ग़मे दुनिया से गर पाई भी फ़ुर्सत सर उठाने की।
फ़लक का देखना तक़रीब तेरे याद आने की[9]॥
खुलेगा किस तरह मज़मूँ मेरे मकतूब[10] का यारब।
क़सम खाई है उस काफ़िर ने काग़ज़ के जलाने की॥

◇ ◇ ◇

---

१. प्रतिदान दिवस २. कर्म-पत्र ३. सृष्टि का प्रथम दिन ४. ताकि ५. जगह (गुंजायश) ६. हाल ७. ठेका ८. निर्माण की अभिलाषा ९. सिर उठाने से आकाश नज़र आता है, इसके साथ ही उसके (तुम्हारे) अत्याचार याद आ जाते हैं। १०. पत्र

तेरे दिल में गर न था आशोबे-ग़म का हौसला।
तू ने फिर क्यों की थी मेरी ग़मगुसारी हाए, हाए॥
क्यों मेरी ग़मख़्वारगी का तुझको आया था ख़याल।
दुश्मनी इतनी थी मेरी दोस्तदारी हाए, हाए॥
उम्र भर का तूने पैमाने-वफ़ा बांधा तो क्या।
उम्र को भी तो नहीं है पायदारी हाए, हाए॥
शर्मे-रुसवाई से जा छुपना नक़ाबे-ख़ाक[1] में।
ख़त्म है उल्फ़त की तुझ पर पर्दादारी हाए, हाए॥
किस तरह काटे कोई शब-हाए-तारे-बरशगाल[2]।
है नज़र ख़ूकर्दा-ए-अख़्तर-शुमारी[3] हाए, हाए॥
इश्क़ ने पकड़ा न था 'ग़ालिब' अभी वहशत का रंग।
रह गया था दिल में जो कुछ ज़ौक़े-ख़्वारी[4] हाए, हाए॥

◇ ◇ ◇

सरगश्तगी में आलमे-हस्ती से यास है।
तस्कीं को दे नवेद कि मरने की आस है[5]॥
लेता नहीं मेरे दिले-आवारा की ख़बर।
अब तक वो जानता है कि मेरे ही पास है॥
पी जिस क़दर मिले शबे-महताब[6] में शराब।
इस बलग़मी मिज़ाज को गर्मी ही रास है।

◇ ◇ ◇

१. मिट्टी के नक़ाब में (कब्र में) २. बरसात की अन्धेरी रात ३. आँखें तारे गिन-गिनकर रात काटने की अभ्यस्त हैं ४. ख्वार होने का शौक़ ५. दिल की शान्ति हमारी शत्रु हो गई, अब उसे यह शुभ-सूचना दो कि प्रेमोन्माद में हम जीवन से निराश हो चुके हैं। ६. पूनम की रात को

है, है, ख़ुदानख़्वास्ता वो और दुश्मनी।
ऐ शौक़े-मुनफ़इल[1] तुझे यह क्या ख़याल है॥
हस्ती के मत फ़रेब में आ जाइयो 'असद'।
आलम[2] तमाम हल्क़ा-ए-दामे-ख़याल[3] है॥

◇ ◇ ◇

एक जा[4] हर्फ़े-वफ़ा[5] लिक्खा था वो भी मिट गया।
ज़ाहिरा काग़ज़ तेरे ख़त का ग़लत-बरदार[6] है॥
आग से पानी में बुझते वक़्त उठती है सदा।
हर कोई दरमांदगी में नाला से लाचार है[7]॥
आंख की तस्वीर सरनामा पे खेंची है कि ता[8]।
तुझ पे खुल जावे कि उसको हसरते-दीदार[9] है॥

◇ ◇ ◇

ख़िज़ां क्या, फ़सले-गुल[10] कहते हैं किस को, कोई मौसम हो।
वही हम हैं, क़फ़स[11] है और मातम बालो-पर का[12] है॥

◇ ◇ ◇

इश्क़ मुझ को नहीं वहशत ही सही।
मेरी वहशत तेरी शोहरत ही सही॥
क़तअ[13] कीजे न तअ़ल्लुक़ हम से।
कुछ नहीं है तो अ़दावत[14] ही सही॥

---

१. ऐ लज्जित अभिलाषा! २. विश्व ३. विचारों का एक जाल-मात्र है ४. जगह ५. 'प्रेम' का शब्द ६. जिस पर से शब्द मिटाए जा सकें ७. लाचारी में आर्तनाद करने पर विवश है ८. ताकि ९. दर्शनों की अभिलाषा १०. वसन्त ११. पिंजरा १२. पंख और बाल नोच लिए जाने का शोक १३. समास १४. द्वेष, शत्रुता

मेरे होने में है क्या रुसवाई।
ऐ वो मजलिस नहीं ख़लवत[1] ही सही॥
हम भी दुश्मन तो नहीं हैं अपने।
ग़ैर को तुझ से मुहब्बत ही सही॥
अपनी हस्ती ही से हो जो कुछ हो।
आगही[2] गर नहीं ग़फ़लत ही सही॥
उम्र हरचंद कि है बर्क़-ख़िराम[3]।
दिल के ख़ूं करने की फ़ुरसत ही सही॥
हम कोई तर्के-वफ़ा[4] करते हैं।
न सही इश्क़ मुसीबत ही सही॥
हम भी तसलीम[5] की ख़ू[6] डालेंगे।
बेनियाज़ी तेरी आदत ही सही॥
यार से छेड़ चली जाए 'असद'।
गर नहीं वस्ल तो हसरत ही सही॥

◇ ◇ ◇

ढूंढे है उस मुग़न्नी-ए-आतिश-नफ़स[7] को जी।
जिसकी सदा हो जलवा-ए-बर्क़-फ़ना मुझे[8]॥
खुलता किसी पे क्यों मेरे दिल का मुआमला।
शेरों के इंतख़ाब[9] ने रुसवा किया मुझे॥

◇ ◇ ◇

१. एकांत २. ज्ञान ३. बिजली की सी गति से गुज़रने वाली ४. प्रेम निभाने से इनकार ५. नतमस्तक होना ६. आदत ७. ऐसा गीत गाने वाला जिसके स्वर में आग भरी हो। ८. जो मृत्यु की बिजली गिराकर मुझे भस्म कर डाले। ९. चयन

उस बज़्म में मुझे नहीं बनती हया किये।
बैठा रहा अगरचे इशारे हुआ किये॥
दिल ही तो है सियासते-दरबां से[1] डर गया।
मैं और जाऊं दर से तेरे बिन सदा किये॥
बेसर्फ़ा ही गुज़रती है हो गरचे उम्रे-ख़िज़्र[2]।
हज़रत भी कल कहेंगे कि हम क्या किया किये॥
मक़दूर हो तो[3] ख़ाक[4] से पूछो कि ऐ लईम[5]।
तू ने वो गंज-हाए-गिरांमाया[6] क्या किये॥
सोहबत में ग़ैर की न पड़ी हो कहीं ये ख़ू[7]।
देने लगा है बोसे बग़ैर इल्तिजा किये॥
'ग़ालिब' तुम्हीं कहो कि मिलेगा जवाब क्या।
माना कि तुम कहा किये और वो सुना किये॥

◇ ◇ ◇

देखना क़िस्मत कि आप अपने पे रश्क आजाये है।
मैं उसे देखूं भला कब मुझ से देखा जाये है॥
ग़ैर को यारब वो क्योंकर मनअ़-गुस्ताख़ी करे[8]।
ग़र हया भी उसको आती है तो शर्मा जाये है॥
होके आशिक़ वो परी-रुख़[9] और नाज़ुक बन गया।
रंग खिलता जाए है जितना कि उड़ता जाये है॥

◇ ◇ ◇

---

१. दरबान की चालों से २. एक दीर्घ-आयु पैग़म्बर-(ख़िज़्र) जितनी आयु ३. पूछने की शक्ति आ जाए तो ४. पृथ्वी ५. कंजूस ६. महान आत्माएं ७. आदत ८. गुस्ताखी करने से रोके ९. परी-जैसे चेहरे वाला

सादगी पर उस को मर जाने की हसरत दिल में है।
बस नहीं चलता कि फिर खंजर कफ़े-क़ातिल में है[१]॥
गरचे है किस-किस बुराई से वले बा-ईं-हमा[२]।
ज़िक्र मेरा मुझ से बेहतर है कि उस महफ़िल में है॥
बस हुजूमे-नाउमीदी[३] ! ख़ाक में मिल जाएगी।
ये जो इक लज़्ज़त[४] हमारी सअ़इ-ए-बेहासिल में[५] है॥
रंजे-रह क्यों खैंचिये वामांदगी को इश्क़ है।
उठ नहीं सकता हमारा जो क़दम मंज़िल में है[६]॥

◇ ◇ ◇

वो बादा-ए-शबाना की सरमस्तियां कहां।
उठिये बस अब कि लज़्ज़ते-ख़्वाबे-सहर गई[७]॥
उड़ती फिरे है ख़ाक मेरी कूए-यार में।
बारे अब ऐ हवा हवस-ए-बालो-पर गई[८]॥
नज़्ज़ारा ने भी काम किया वां नक़ाब का।
मस्ती से हर निगाह तेरे रुख पर[९] बिखर गई॥

◇ ◇ ◇

१. उसकी सादगी पर मरने की हसरत दिल में रह जाती है क्योंकि वह तुरन्त खंजर निकाल लेता है। २. यद्यपि महफ़िल में वे मेरी बहुत बुराई करते हैं ३. निराशाओं के हुजूम ४. आनन्द ५. व्यर्थ के प्रयत्न में ६. रास्ता चलने का कष्ट क्यों झेलें, निराशाओं को हमसे इश्क़ हो गया है और वे एक पग भी नहीं चलने देतीं। ७. अब यौवन-काल कहाँ, उठिये अब जवानी की नींद छोड़िये। ८. ऐ हवा, भगवान का शुक्र है कि अब पंख रखने की लालसा समाप्त हो गई। ९. चेहरे पर

तसकीं को क्यों न रोयें जो ज़ौक़े-नज़र मिले[1] ।
हूराने - ख़ुल्द में[2] तेरी सूरत मगर मिले ॥
अपनी गली में मुझ को न कर दफ़्न बादे-क़त्ल ।
मेरे पते से ख़ल्क़ को[3] क्यों तेरा घर मिले ॥
साक़ीगरी की शर्म करो आज वर्ना हम ।
हर शब पिया ही करते हैं मै जिस क़दर मिले ॥
तुझ से तो कुछ कलाम नहीं[4] लेकिन ऐ नदीम[5] ।
मेरा सलाम कहियो अगर नामाबर मिले ॥
तुम को भी हम दिखायेंगे मजनूं ने क्या किया ।
फ़ुर्सत कशाकशे-ग़मे-पिनहां से[6] गर मिले ॥
लाज़िम नहीं कि ख़िज़्र की हम पैरवी करें ।
माना कि इक बुज़ुर्ग हमें हम-सफ़र मिले ॥
ऐ साकिनाने - कूचा - ए - दिलदार[7] देखना ।
तुम को कहीं जो 'ग़ालिबे'-आशुफ़्ता-सर[8] मिले ॥

◇ ◇ ◇

कोई दिन गर ज़िंदगानी और है ।
अपने जी में हम ने ठानी और है ॥
आतिशे-दोज़ख़[9] में ये गर्मी कहां ?
सोज़े-ग़म-हाए-निहानी[10] और है ॥

---

१. तुम्हें देख कर आंखें तृप्त हों २. बहिश्त की हूरों में ३. लोगों को ४. कहना नहीं ५. मित्र ६. निरन्तर दुखों के द्वन्द्व से ७. दिलदार की गली में रहने वालो ! ८. 'ग़ालिब' जो इश्क़ के हाथों दीवाना हो चुका है ९. नरक की आग १०. निहित ग़म की गर्मी

बारहा देखी हैं उन की रंजिशें।
पर कुछ अब के सरगिरानी और है॥
दे के खत मुंह देखता है नामाबर।
कुछ तो पैग़ामे-ज़बानी और है॥
हो चुकीं 'ग़ालिब' बलायें सब तमाम।
एक मर्गे-नागहानी[1] और है॥

◇ ◇ ◇

कोई उम्मीद बर नहीं आती[2]।
कोई सूरत नज़र नहीं आती॥
मौत का एक दिन मुअ़य्यन[3] है।
नींद क्यों रात भर नहीं आती॥
आगे आती थी हाले-दिल पे हंसी।
अब किसी बात पर नहीं आती॥
जानता हूं सवाबे-ताअ़तो-ज़ुहद[4]।
पर तबीयत इधर नहीं आती॥
है कुछ ऐसी ही बात जो चुप हूं।
वरना क्या बात कर नहीं आती॥
क्यों न चीख़ूं कि याद करते हैं।
मेरी आवाज़ गर नहीं आती॥
हम वहां हैं जहाँ से हमको भी।
कुछ हमारी खबर नहीं आती॥

---

१. आकस्मिक मृत्यु २. पूरी नहीं होती ३. नियत ४. संयम तथा उपासना के पुण्य-फल से परिचित हूँ।

मरते हैं आरज़ू में मरने को।
मौत आती है पर नहीं आती॥
काबा किस मुंह से जाओगे 'ग़ालिब'।
शर्म तुम को मगर नहीं आती॥

◇ ◇ ◇

दिले-नादां तुझे हुआ क्या है?
आख़िर इस दर्द की दवा क्या है?
हम हैं मुशताक़[1] और वो बेज़ार।
या इलाही ये माजरा क्या है?
मैं भी मुंह में ज़ुबान रखता हूँ।
काश! पूछो कि मुद्दआ क्या है॥
जब कि तुझ बिन नहीं कोई मौजूद।
फिर ये हंगामा ऐ ख़ुदा! क्या है?
ये परी-चेहरा लोग कैसे हैं?
ग़मज़ा-ओ-इश्वा-ओ-अदा[2] क्या है?
सब्ज़ा-ओ-गुल[3] कहां से आये हैं?
अब्र[4] क्या चीज़ है हवा क्या है?
हम को उन से वफ़ा की है उम्मीद।
जो नहीं जानते वफ़ा क्या है?
हां भला कर तेरा भला होगा।
और दरवेश की सदा[5] क्या है?

---

१. उत्सुक २. नाज़ और अदा ३. पत्ते, फूल ४. बादल
५. फ़क़ीर की आवाज़

जान तुम पर निसार करता हूँ।
मैं नहीं जानता दुआ क्या है?
मैंने माना कि कुछ नहीं 'ग़ालिब।
मुफ़्त हाथ आए तो बुरा क्या है?

◇ ◇ ◇

कहते तो हो तुम सब कि बुते-ग़ालिया-मू[1] आए।
इक मर्तबा[2] घबरा के कहो कोई कि वो आए॥
जल्लाद से डरते हैं न वाइज़[3] से झगड़ते।
हम समझे हुए हैं उसे जिस भेस में जो आए॥
अपना नहीं ये शेवा कि आराम से बैठें।
उस दर पे[4] नहीं बार[5] तो काबा ही को हो आए॥

◇ ◇ ◇

फिर उसी बेवफ़ा पे मरते हैं।
फिर वही ज़िन्दगी हमारी है॥
बेखुदी बेसबब नहीं 'ग़ालिब'।
कुछ तो है जिसकी पर्दा-दारी है॥

◇ ◇ ◇

बे-तलब दें तो मज़ा उसमें सवा मिलता है।
वो गदा[6] जिसको न हो खू-ए-सवाल[7] अच्छा है॥
देखिये पाते हैं उश्शाक़[8] बुतों से क्या फ़ैज़?
इक बिरहमन ने कहा है कि ये साल अच्छा है॥

---

१. सुगन्धित केशों वाला २. एक बार ३. उपदेशक ४. दरवाज़े पर ५. पहुँच ६. भिखारी ७. मांगने की आदत ८. आशिक़ लोग

उनके देखे से जो आ जाती है मुँह पर रौनक़ ।
वो समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है ॥
हम-सुख़न[1] तेशा ने फ़रहाद को शीरीं से किया ।
जिस तरह का कि किसी में हो कमाल अच्छा है ॥
क़तरा दरिया में जो मिल जाए तो दरिया हो जाए ।
काम अच्छा है वो जिसका कि माआल[2] अच्छा है ॥
हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन ।
दिल के खुश करने को 'ग़ालिब' यह ख़याल अच्छा है ॥

◇ ◇ ◇

एक हंगामे पे मौक़ूफ़[3] है घर की रौनक़ ।
नोहा-ए-ग़म[4] ही सही नग़मा-ए-शादी[5] न सही ॥
न सतायश[6] की तमन्ना न सिले[7] की परवा ।
गर नहीं हैं मेरे अशआ़र में मानी[8] न सही ॥

◇ ◇ ◇

शिकवा के नाम से बेमेहर[9] ख़फ़ा होता है ।
ये भी मत कह कि जो कहिये तो गिला होता है ॥
पुर[10] हूं मैं शिकवे से यूं राग से जैसे बाजा ।
इक ज़रा छेड़िये फिर देखिये क्या होता है ॥

---

१. परस्पर बात-चीत पर तय्यार २. परिणाम ३. आधारित
४. आर्तनाद ५. खुशी के गीत ६. प्रशंसा ७. पुरस्कार ८. अर्थ
९. निर्दयी १०. परिपूर्ण

क्यों न ठहरें हदफ़े - नावके - बेदाद कि हम।
आप उठा लाते हैं गर तीर खता होता है[1] ॥
खूब था पहले से होते जो हम अपने बदख्वाह[2]।
कि भला चाहते हैं और बुरा होता है॥
नाला[3] जाता था परे अर्श से मेरा और अब।
लब तक आता है जो ऐसा ही रसा[4] होता है॥
रखियो 'ग़ालिब' मुझे इस तल्खनवाई से[5] मुआफ़।
आज कुछ दर्द मेरे दिल में सवा होता है॥

◇ ◇ ◇

हर एक बात पे कहते हो तुम कि तू क्या है?
तुम्हीं कहो कि ये अंदाज़े - गुफ़्तगू क्या है?
न शोला में ये करिश्मा[6] न बर्क़[7] में ये अदा।
कोई बताओ कि वो शोखे-तुंद-ख़ू[8] क्या है?
रगों में दौड़ते-फिरने के हम नहीं क़ायल।
जब आंख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है?
वो चीज़ जिसके लिए हम को हो बहिश्त अज़ीज़।
सिवाये बादा-ए-गुलफ़ामो-मुश्कबू क्या है?

---

१. हम उसके तीर (अत्याचारों) का निशाना क्यों न बनें, क्योंकि तीर खाने का हमें इतना शौक़ है कि यदि तीर चूक जाता है तो हम स्वयं उठाकर उसे पुनः चलाने वाले के हवाले कर देते हैं (कि दोबारा आज़मा)। २. बुरा चाहने वाले ३. आर्तनाद ४. पहुँचने वाला ५. कटु बात कहने से ६. चमत्कार ७. बिजली ८. कटु स्वभाव का माशूक़ (न उसकी शोले से उपमा दी जा सकती है न बिजली से।)

पियूं शराब अगर खुम[1] भी देख लूं दो चार।
ये शीशा-ओ-क़दह-ओ-कूज़ा-ओ-सुबू[2] क्या है ?
रही न ताक़ते-गुफ़्तार[3] और अगर हो भी।
तो किस उमीद पे कहिये कि आरज़ू क्या है ?

◇ ◇ ◇

मैं उन्हें छेड़ूं और कुछ न कहें।
चल निकलते जो मै पिये होते॥
क़हर हो या बला हो जो कुछ हो।
काश ! कि तुम मेरे लिए होते॥
मेरी क़िस्मत में ग़म गर इतना था।
दिल भी यारब ! कई दिये होते॥
आ ही जाता वो राह पर 'ग़ालिब'।
कोई दिन और भी जिये होते॥

◇ ◇ ◇

ग़ैर लें महफ़िल में बोसे जाम के।
हम रहें यूं तिश्ना-लब[4] पैग़ाम के॥
खस्तगी का[5] तुमसे क्या शिकवा कि ये।
हथकंडे हैं चर्ख़े-नीलीफ़ाम[6] के॥
ख़त लिखेंगे गरचे मतलब कुछ न हो।
हम तो आशिक़ हैं तुम्हारे नाम के॥
इश्क़ ने 'ग़ालिब' निकम्मा कर दिया।
वरना हम भी आदमी थे काम के॥

◇ ◇ ◇

---

१. मटके २. बोतल, प्याले आदि ३. वाक्-शक्ति ४. प्यासे
५. टूटे दिल का ६. आकाश (खुदा)

नुकताचीं[1] है ग़मे-दिल उसको सुनाये न बने।
क्या बने बात जहां बात बनाये न बने॥
मैं बुलाता तो हूं उसको मगर ऐ जज़्बा-ए-दिल।
उस पे बन जाए कुछ ऐसी कि बिन आये न बने॥
खेल समझा है कहीं छोड़ न दे, भूल न जाए।
काश यूं भी हो कि बिन मेरे सताये न बने॥
ग़ैर फिरता है लिये यूं तेरे खत को कि अगर।
कोई पूछे कि ये क्या है तो छुपाये न बने॥
इस नज़ाकत का बुरा हो वो भले हैं तो क्या।
हाथ आवें तो उन्हें हाथ लगाये न बने॥
कह सके कौन कि ये जलवागरी[2] किस की है।
पर्दा छोड़ा है वो उसने कि उठाये न बने॥
मौत की राह न देखूं कि बिन आये न रहे।
तुम को चाहूँ कि न आओ तो बुलाये न बने॥
बोझ वो सर से गिरा है कि उठाये न उठे।
काम वो आन पड़ा है कि बनाये न बने॥
इश्क़ पर ज़ोर नहीं, है ये वो आतिश[3] 'ग़ालिब'।
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने॥

◇ ◇ ◇

कभी नेकी भी उसके जी में गर आजाये है मुझसे।
जफ़ाएं करके अपनी याद शर्मा जाये है मुझसे॥

---

१. मीन-मेख निकालने वाला २. प्रदर्शन ३. आग

ख़ुदाया जज़्बा-ए-दिल की मगर तासीर[1] उलटी है।
कि जितना खेंचता हूँ और खिचता जाये है मुझसे॥
वो बदख़ू[2] और मेरी दास्ताने-इश्क़ तूलानी[3]।
इबारत मुख़्तसर क़ासिद भी घबरा जाये है मुझसे[4]॥
उधर ये बदगुमानी है इधर ये नातवानी है।
न पूछा जाये है उससे न बोला जाये है मुझसे॥
हुए हैं पांव ही पहले नबरदे-इश्क़ में[5] ज़ख़्मी।
न भागा जाये है मुझसे न ठहरा जाये है मुझसे॥
क़यामत है कि होवे मुद्दई का हम-सफ़र 'ग़ालिब'।
वो काफ़िर जो ख़ुदा को भी न सौंपा जाये है मुझसे॥

◇ ◇ ◇

बाज़ीचा-ए-इतफ़ाल[6] है दुनिया मेरे आगे।
होता है शबो-रोज़ तमाशा मेरे आगे॥
मत पूछ कि क्या हाल है मेरा तेरे पीछे।
तू देख कि क्या रंग है तेरा मेरे आगे॥
नफ़रत का गुमां गुज़रे है मैं रश्क से गुज़रा[7]।
क्योंकर कहूँ लो नाम न उनका मेरे आगे॥
ईमां मुझे रोके है तो खींचे है मुझे कुफ़्र।
काबा मेरे पीछे है, कलीसा मेरे आगे॥

---

१. प्रभाव २. बुरी आदत वाला (बात नहीं सुनता) ३. प्रेम कथा लम्बी है ४. संक्षेप में यह कि यदि संदेश पत्रवाहक को सुनाऊं तो वह भी घबरा जाता है। ५. इश्क़ से जूझने के प्रारंभ में ही ६. बच्चों का खेल ७. ईर्षावश मैं उनका नाम किसी की ज़बान पर आना सहन नहीं करता।

खुश होते हैं पर वस्ल में यूं मर नहीं जाते।
आई शबे-हिजरां[1] की तमन्ना मेरे आगे॥
गो हाथ को जुंबिश[2] नहीं आंखों में तो दम है।
रहने दो अभी साग़रो-मीना मेरे आगे॥

◇ ◇ ◇

रोने से और इश्क़ में बेबाक हो गये।
धोये गये हम ऐसे कि बस पाक[3] हो गये॥
कहता है कौन नाला-ए-बुलबुल को[4] बेअसर।
पर्दे में गुल[5] के लाख जिगर चाक हो गये[6]॥
पूछे है क्या वजूदो-अदम अहले-शौक़ का[7]।
आप अपनी आग से खसो-खाशाक[8] हो गये॥
करने गये थे उससे तग़ाफ़ुल[9] का हम गिला।
की एक ही निगाह कि बस खाक हो गये॥
इस रंग से उठाई कल उसने 'असद' की लाश।
दुश्मन भी जिसको देखके ग़मनाक[10] हो गये॥

◇ ◇ ◇

इब्ने - मरियम[11] हुआ करे कोई।
मेरे दुख की दवा करे कोई॥

---

१. जुदाई की रात २. हाथ नहीं हिल सकते ३. पवित्र (आज़ाद) (निश्चित) ४. बुलबुल के आर्तनाद को ५. फूल ६. फट गये ७. आशिकों के जीवन-मरण की बात क्या पूछते हो? ८. घास-फूस (ईंधन) ९. उपेक्षा १०. शोकातुर ११. मरियम का पुत्र ईसा (हर दुख की दवा करने वाला)

शरअ़-ओ-आईन पर मदार सही।
ऐसे क़ातिल का क्या करे कोई[1] ॥
बात पर वां ज़बान कटती है।
वो कहें और सुना करे कोई ॥
बक रहा हूं जुनूं में क्या क्या कुछ।
कुछ न समझे खुदा करे कोई ॥
न सुनो गर बुरा कहे कोई।
न कहो गर बुरा करे कोई ॥
रोक लो गर ग़लत चले कोई।
बख़्श दो गर ख़ता[2] करे कोई ॥
कौन है जो नहीं है हाजतमंद[3]।
किस की हाजत रवा[4] करे कोई ॥
जब तवक़्क़ो ही उठ गई 'ग़ालिब'।
क्यों किसी का गिला करे कोई ॥

◇ ◇ ◇

हज़ारों ख़्वाहिशें[5] ऐसी कि हर ख़्वाहिश पे दम निकले।
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले ॥
डरे क्यों मेरा क़ातिल क्या रहेगा उसकी गरदन पर।
वो ख़ूं जो चश्मे-तर से[6] उम्र भर यूं दम-ब-दम निकले ॥

---

१. माना कि संसार धर्म तथा नियमों का पाबंद है और अपराधी को दण्ड देता है लेकिन ऐसे क़ातिल का कोई क्या करे जो बिना तलवार के क़त्ल कर देता है। २. अपराध ३. ज़रूरतमंद ४. पूरी ५. अभिलाषाएं ६. सजल नेत्रों से

निकलना ख़ुल्द[1] से आदम[2] का सुनते आये थे लेकिन।
बहुत बे-आबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले॥
मगर[3] लिखवाये कोई उसको ख़त तो हमसे लिखवाये।
हुई सुबह और घर से कान पर रखकर क़लम निकले॥
मुहब्बत में नहीं है फ़र्क़ जीने और मरने का।
उसी को देखकर जीते हैं जिस काफ़िर पे दम निकले॥
ख़ुदा के वास्ते पर्दा न काबे का उठा वाइज़[4]।
कहीं ऐसा न हो यां भी वही काफ़िर सनम[5] निकले॥
कहां मैख़ाना का दरवाज़ा 'ग़ालिब' और कहां वाइज़।
पर इतना जानते हैं कल वो जाता था कि हम निकले॥

◇ ◇ ◇

जोशे-जुनूँ से[6] कुछ नज़र आता नहीं 'असद'।
सहरा[7] हमारी आंख में यक मुश्ते-ख़ाक[8] है॥

◇ ◇ ◇

पच[9] आ पड़ी है वादा-ए-दिलदार की[10] मुझे।
वो आए या न आए पे यां इंतिज़ार है॥
बे-पर्दा सूए-वादी-ए-मजनूँ[11] गुज़र न कर।
हर ज़र्रे के नक़ाब[12] में दिल-बेक़रार है॥

◇ ◇ ◇

---

१. स्वर्ग २. आदि-मनुष्य (गेहूँ का दाना खा लेने के अपराध में भगवान ने आदम को स्वर्ग से निकाल दिया था (इस्लामी परम्परा)। ३. यहाँ मगर का अर्थ 'शायद' है ४. उपदेशक ५. बुत ६. उन्माद के वेग के कारण ७. बियाबान ८. मुट्ठी भर धूल ९. ज़िद १०. महबूब के वादे की ११. मजनूँ की वादी (बियाबान) १२. पर्दे

आईना क्यों न दूं कि तमाशा कहें जिसे ।
ऐसा कहां से लाऊं कि तुझ-सा कहें जिसे ॥
फूंका है किस ने गोशे-मुहब्बत में ऐ ख़ुदा ।
अफ़सूने - इंतिज़ार तमन्ना कहें जिसे[1] ॥
'ग़ालिब' बुरा न मान जो वाइज़ बुरा कहे ।
ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहें जिसे ॥

◇ ◇ ◇

नाकर्दा गुनाहों की भी हसरत की मिले दाद ॥
यारब अगर इन कर्दा-गुनाहों की सज़ा है[2] ॥

◇ ◇ ◇

गो वां नहीं पे वां के निकाले हुए तो हैं ।
काबा से इन बुतों को भी निसबत[3] है दूर की ॥
क्या फ़र्ज़[4] है कि सब को मिले एकसा जवाब ।
आओ ना हम भी सैर करें कोहे-तूर[5] की ॥
गर्मी सही कलाम में[6] लेकिन न इस क़दर ।
कि जिससे बात उसने शिकायत ज़रूर की ॥

◇ ◇

---

१. हे भगवान ! प्रेम के कान में यह किसने जादू फूंक डाला कि आकाँक्षा (जो कभी पूरी नहीं हो सकती) पूरा होने की प्रतीक्षा करती रहती है । २. जो पाप हमने किये हैं यदि उनका दण्ड अवश्य मिलना है तो जो पाप किसी कारण हम से नहीं हो सके और जिनके करने की मन में अभिलाषा रह गई है, उनकी दाद भी अवश्य मिलनी चाहिये । ३. सम्बन्ध ४. आवश्यक ५. तूर पहाड़ जिस पर खड़े होकर हज़रत मूसा ने खुदा से बातें की थीं—मूसा ने कहा था 'ऐ खुदा ! मुझ-को दिखाई दे', उत्तर मिला था कि तू नहीं देख सकेगा । ६. बात-चीत में

मुद्दत हुई है यार को मेहमां किए हुए।
जोशे-क़दह से बज़्मे-चिराग़ां किये हुए[1] ॥
करता हूँ जमअ़ फिर जिगरे-लख़्त-लख़्त को।
मुद्दत हुई है दावते-मिज़गाँ किये हुए[2] ॥
बाहमदिगर हुए हैं दिलो-दीदा फिर रक़ीब।
नज़्ज़ारा - ओ - ख़याल का सामां किये हुए[3] ॥
दिल फिर तवाफ़े - कूए - मलामत को जाए है।
पिंदार का सनम-कदा वीरां किये हुए[4] ॥
फिर शौक़ कर रहा है ख़रीदार की तलब।
अ़र्ज़े-मताए-अक़्लो - दिलो - जां किये हुए[5] ॥
मांगे है फिर किसी को लबे-बाम पर हवस।
ज़ुल्फ़े-सियाह रुख़ पे परीशां किये हुए[6] ॥
इक नौबहारे - नाज़ को[7] ताके है फिर निगाह।
चेहरा फ़रोग़े - मै से गुलिस्तां किये हुए ॥

---

१. शराब के प्यालों से महफ़िल में दीपावली किये हुए २. उस दिल को जो टुकड़े-टुकड़े हो चुका है एकत्र कर रहा हूँ ताकि वे अपने पलकों को मेरे दिल की दावत खिला सकें। ३. फिर आंखों ने तुझे देखने का साहस किया, फिर दिल ने तेरे ख़याल पर ध्यान दिया। फिर ये दोनों एक ही महबूब पर आशिक़ हो एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी हो गए। ४. दिल ने फिर उस कूचे में चक्कर काटने का इरादा कर लिया है, जहां अपमान किया जाता है; आत्म-सम्मान के मंदिर से निकल कर ५. बुद्धि, दिल और जान की कीमत देकर ६. मेरी काम-वासना फिर किसी को इस तरह कोठे पर देखना चाहती है कि उसके काले केश चेहरे पर बिखरे हों। ७. नाज़-नख़रों के वसंत (महबूब) को

फिर जी में है कि दर पे किसी के पड़े रहें।
सर ज़ेर - बारे - मिन्नते - दरबां किये हुए[1] ॥
जी ढूंढता है फिर वही फ़ुर्सत कि रात दिन।
बैठे रहें तसव्वुरे - जानां[2] किये हुए ॥

◇ ◇ ◇

गदा[3] समझ के वो चुप था, मेरी जो शामत आई।
उठा और उठके क़दम मैंने पासबां के लिये[4] ॥
बक़द्रे - शौक़ नहीं ज़र्फ़ तंग - नाए ग़ज़ल।
कुछ और चाहिये वुसअ़त मेरे बयां के लिए[5] ॥
ज़बां पे बारे - ख़ुदाया[6] ये किसका नाम आया।
कि मेरे नुत्क़[7] ने बोसे मेरी ज़ुबां के लिए ॥
अदाए - ख़ास से 'ग़ालिब' हुआ है नुक्तासरा।
सला - ए - आ़म है यारानेे - नुक्तादां के लिए[8] ॥

◇ ◇ ◇

---

१. सिर पर दरबान के उपकार का बोझ लिए हुए २. म ख़याल ३. भिखारी ४. दरबान के पांव पर गिर पड़ा ५. ग़ज़ल तंग गली (संकुचित क्षेत्र) मेरे शेर कहने के शौक़ के अनुकूल साम नहीं रखती। मेरे शेरों के लिए विशाल क्षेत्र की आवश्यकता है। ६. भगवान ! ७. वाक्-शक्ति ८. 'ग़ालिब' ने ये शेर एक विशेष ढंग कहे हैं। समस्त मर्मज्ञों और मित्रों को यह विशेष ढंग अपनाना चाहिये